नूतन निष्काम पत्रिका

स्थापना वर्ष:१९४२

नूतन निष्काम पत्रिका * वर्ष-8 * अंक-6 * मुम्बई * जून 2017 * मूल्य-रु.9/-

२१ जून, अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस पर सबको हार्दिक शुभ कामनायें

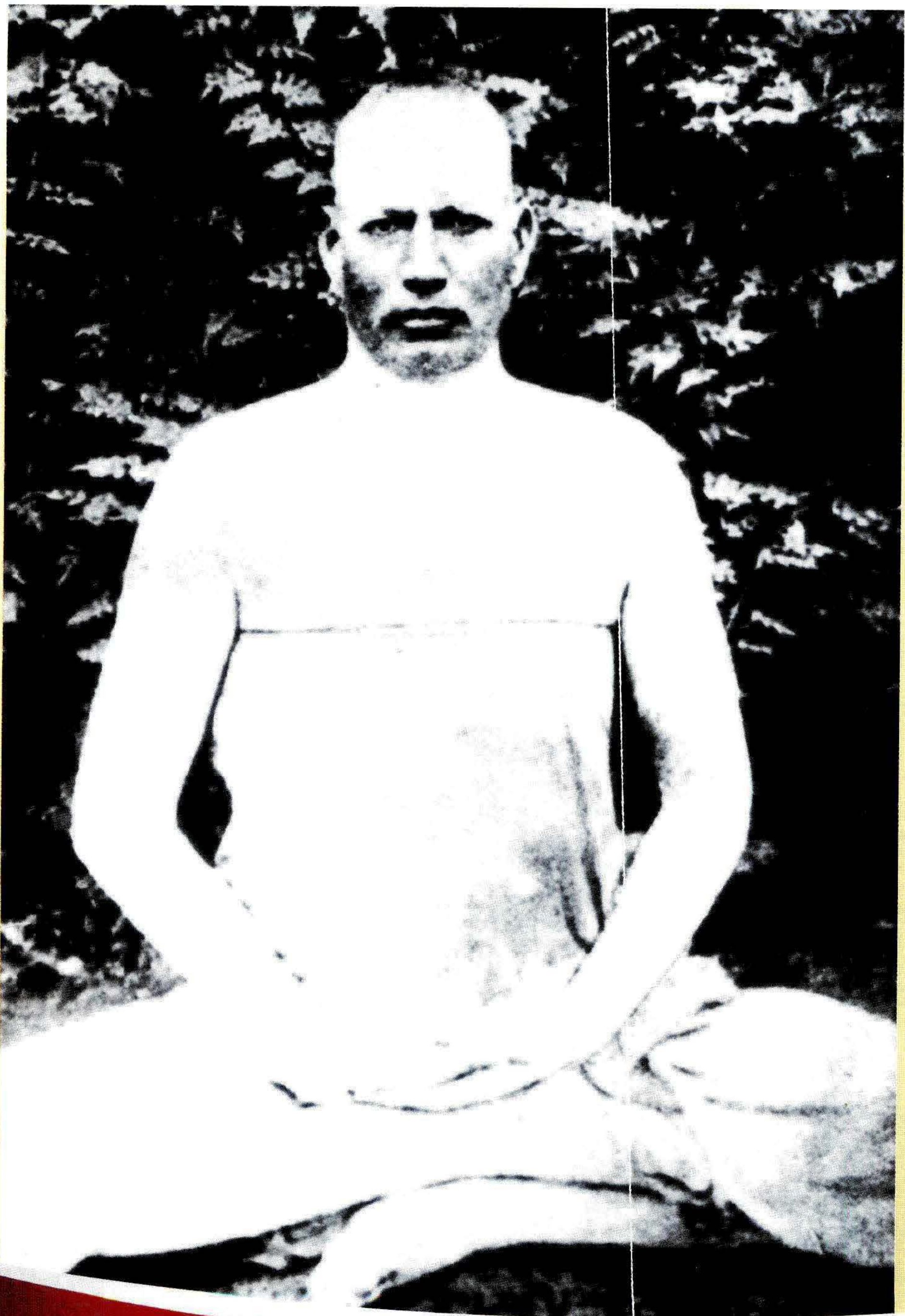

महर्षि ने पतंजालिद्वारा प्रणीत - योग

- यम
- नियम
- आसन
- प्राणायाम
- प्रत्याहार
- धारणा
- ध्यान
- समाधि

समाधिस्थअवस्थामें

युगप्रवर्तक-महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द की क्षमाशीलता

वं. नन्दलाल निर्भय

महापुरुष अपने सद्‌गुणों एवं उच्च आचरण की छाप संसार में छोड़ जाते हैं। नर-नारी उन दिव्यात्माओं का गुणगान करते रहते हैं। महान पुरुष कभी मरते नहीं उनके सद्‌गुण सद्व्यवहार उन्हें अमर कर देते हैं। उनके जीवन चरित्र पढ़कर अथवा सुनकर पतित व्यक्ति भी महान बन जाते हैं।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज उन्हीं महापुरुषों में से थे। वे धार्मिक और विद्वान थे। वे बाल ब्रह्मचारी तथा योगी भी थे। वे उदार हृदय, दयावान और क्षमाशील थे। वे सच्चे साधु व देशभक्त नेता थे।

ज्येष्ठवदी १३ सम्वत १९२५ की घटना है वे पाखण्ड का खण्डन करके कर्म की प्रधानता पर व्याख्यान दे रहे थे। वे गंगा स्नान से मोक्ष मिलने की धारणा को गलत बता रहे थे तथा महापुरूषों का स्वांग करना पाप बता रहे थे। आसपास के क्षेत्र में स्वामी जी की कीर्ति फैल रही थी। उनके व्याख्यानों को सुनने नर, नारी प्रतिदिन हजारों की संख्या में आते थे। उनका व्यक्तित्व व विद्वता सबको प्रभावित कर देती थी।

एक दिन कर्णवास के ठाकुर राव कर्णसिंह स्वामी जी के पास आकर कहने लगे। क्यों रे दयानन्द तू देवी देवताओं को गालियां क्यों देता है और गीता गंगा की निन्दा क्यों करता है?

महर्षि दयानन्द ने गम्भीराता पूर्वक उत्तर दिया, भोले भाई! मैं किसी को गालियां नहीं देता और किसी की निन्दा भी नहीं करता। मैं तो सदैव सच्चाई का प्रचार करता हूँ। याद रखो ठाकुर साहब, गंगा नहाने से कभी किसी को मुक्ति नहीं मिल सकती। शुभ कर्मो के बिना कल्याण असम्भव है। यदि आप कल्याण चाहते हैं तो वेद पथ पर चलना सीखो।

यह सुनकर राव कर्णसिंह नाराज हो गया तथा स्वामी जी पर हमला करने को आगे बढ़ा। महर्षि ने उसे एक हाथ से पीछे धकेल दिया। इससे वह दो बार भारी क्रोधित होकर स्वामी जी पर झपटा। वह नंगी तलवार हाथ में लिए हुए था। स्वामी दयानन्द ने उसका यह कुकृत्य देखकर शेर जैसी फुर्ती दिखाई तथा उसका तलवार वाला दाहिना हाथ पकड़कर उसकी तलवार छीन ली। तलवार को धरती पर टेक कर उसके दो टुकड़े कर दिये और उसे फटकार लगाते हुए कहा कि यदि ''शास्त्रार्थ करना है तो अपने गुरु रंगाचार्य को वृन्दावन से बुलवा लो और यदि युद्ध करना हो तो जयपुर या जोधपुर नरेश से जाकर भिड़ो। मैं संन्यासी हूँ तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं करूंगा। तुमने अपना कर्म छोड़ दिया है किन्तु मैं संन्यासी का धर्म कदापि नहीं छोडूंगा। अगर चाहूं तो एक घूंसे में तुम्हारे प्राण निकाल दूं। लेकिन मैं ऐसा नहीं करूंगा। जाओ भगवान तुम्हें सुमति प्रदान करे।'' कर्णसिंह का मुंह पीला पड़ गया तथा अपना सिर नीचा करके वहां से चला गया। नर-नारी महर्षि दयानन्द की जय का उद्‌घोष करने लगे।

एक बार महर्षि दयानन्द अनूप शहर में व्याख्यान दे रहे थे। उनकी तर्क शैली, विद्वता पर नर-नारी मुग्ध थे। सब उनके व्याख्यान बड़े श्रद्धा भाव से सुनते थे।

एक दिन एक ब्राह्मण स्वामी जी के निवास स्थान पर आया। उसने नमस्ते करके स्वामी जी का अभिवादन किया। उसके बाद स्वामी जी को एक पान भेंट किया तथा वहां से रफूचक्कर हो गया, स्वामी जी ने पान को मुंह में रख लिया, शीघ्र ही उनको पान में विष होने का ज्ञान हो गया। वे उसी वक्त किसी को भी बिना बताये गंगा के किनारे चले गए। उन्होंने वहां जाकर उस विष को न्यौली क्रिया द्वारा पेट से बाहर निकाल दिया। इस बात की चर्चा सब जगह फैल गई।

सैयद मौहम्मद तहसीलदार महर्षि दयानन्द जी महाराज का भक्त था। उसने यह बात सुनी तो बहुत नाराज हुआ। उसने उस पाखण्डी का विष देने वाले व्यक्ति का पता लगा लिया तथा उसे गिरफ्तार करवा लिया। दूसरे दिन प्रात:काल उस दुष्टात्मा को लेकर स्वामी जी के पास पहुँचाया तथा हाथ जोड़कर नमस्ते की।

स्वामी जी ने यह सब कुछ देखकर अपना मुंह उनकी ओर से फेर लिया। यह देखकर सैयद मोहम्मद तहसीलदार घबराकर कहने लगा। स्वामी जी महाराज क्या मैंने कोई गलती की है? तब महर्षि ने कहा 'हां, भारी गलती की है आपने! इस व्यक्ति को क्यों पकड़ लिया आपने तहसीलदार जी! इसे तुरन्त छोड़ दो। सैयद मोहम्मद बोले, ''स्वामी जी यह हत्यारा है इसे दंडित करना मेरा भी तो फर्ज है।''

महर्षि दयानन्द ने कहा ''मैं संसार को बंधन में डालने नहीं अपितु बन्धन मुक्त कराने आया हूँ। अरे देखो। यह पापी अपने पाप के कारण ही तो कांप रहा है। इसे तुरन्त बन्धन मुक्त कर दो।'' सैयद मोहम्मद ने उसे तुरन्त आजाद कर दिया। वह स्वामी जी का गुणगान करता हुआ वहाँ से चला गया। ऐसे क्षमाशील थे महर्षि दयानन्द।

यदि आज संसार उनके बताए हुए वेद पथ पर अग्रसर हो जाए तो विश्व का कल्याण हो जाए। आज जो आपसी कलह नाना प्रकार के मत-मतान्तर एवं पाखण्ड पनप रहे हैं सबका खात्मा हो जाये। इस समय चारों ओर दु:ख का साम्राज्य है। वह समाप्त होकर सुख की वर्षा जगत में होने लगे। परमात्मा सबको सुबुद्धि प्रदान करे।

वैदिक पथ पर चलें, चलायें। सकल विश्व को स्वर्ग बनायें।।

❑❑❑

आर्य समाज सांताक्रुज़, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्ष : ८ अंक ६ (जून - २०१७)

- दयानंदाब्द : १९४, विक्रम सम्वत् : २०७४
- सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११८

प्रबन्ध संपादक : चन्द्रगुप्त आर्य
संपादक : संगीत आर्य
सह संपादक : संदीप आर्य
कार्यकारी संपादक : विनोद कुमार शास्त्री
लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य,
यशबाला गुप्ता.

विज्ञापन की दरें : शुल्क

- पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/- • एक प्रति : रु. ९/-
- १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/- • वार्षिक : रु. १००/-
- १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/- • आजीवन : रु. १०००/-
- विशेषांक की दरें भिन्न होंगी ।

वर्गीकृत विज्ञापन

रु. १०/- प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/-

चैक/डीडी/मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। **'नूतन निष्काम पत्रिका'** का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पता : आर्य समाज सांताक्रुज़
(विठ्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.),
मुंबई -५४. फोन : २६६० २८००, २६६० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
महर्षि दयानन्द की क्षमाशीलता	०२
सम्पादकीय	३
आर्य समाज का छठा नियम	४-५
समिधाएं कैसी हों?	६-७
'वैदिक विद्वान'/गुरुकुल आश्रम आमसेन	७
उपासना का आनन्द	८-९
वेद की कुछ शिक्षाएँ	१०-११
मोक्ष के साधन	१२-१३
''महर्षि दयानन्द की कुछ उपयोगी बातें''	१४
गौहत्या-प्रतिबन्धः	१५-१६
सत्यधर्मा राजा	१६

सम्पादकीय

योग दिवस

महर्षि दयानन्द सरस्वती के आत्मकथन से विदित होता है कि इस समय उनके पास शिवसन्ध्या, हठयोग-प्रदीपिका तथा योग बीज आदि हठयोग के कतिपय ग्रन्थ थे। दयानन्द ने इन्हीं ग्रन्थों का पुनः- पुनः पारायण और विचार किया। हठ योग की साधना पातञ्जल योग की पद्धति से मूलतः भिन्न है। जहाँ महर्षि पतञ्जलि द्वारा उपदिष्ट राजयोग में यमनियमादि योग के आठ अंगों के परिपालन पर जोर दिया गया है, वहाँ हठयोग में कुछ शारीरिक तथा मानसिक रहस्यपूर्ण क्रियाओं तथा जटिल साधनाओं का प्रतिपादन मिलता है। हठयोग के अनुसार मानव शरीर में इडा, पिंगला एवं सुषुम्णा नाड़ियों के अतिरिक्त अष्ट-चक्रों की अवस्थिति है। दयानन्द के हृदय में हठयोग के प्रतिपाद्य विषयों की यथार्थ जानकारी प्राप्त करने की इच्छा उत्तरोत्तर बलवती हो रही थी। एक दिन अनायास ऐसा संयोग उत्पन्न हुआ, जिसका लाभ उठाकर उन्होंने हठयोग के विधायक ग्रन्थों में वर्णित शरीर स्थित नाड़ी चक्रों की वास्तविकता का परिज्ञान करना चाहा। इस घटना का उल्लेख स्वामीजी ने अपने आत्मकथन में इस प्रकार किया है- ''एक दिन देव संयोग से एक शव मुझे नदी में बहता हुआ मिला। तब सचमुच मुझे अवसर प्राप्त हुआ कि मैं उसकी परीक्षा करता। ...... मैं नदी के भीतर गया और शव को पकड़ तट पर लाया। मैंने तीक्ष्ण चाकू से उसे यथायोग्य काटना आरम्भ किया और हृदय को उसमें से निकाल लिया और ध्यानपूर्वक देख परीक्षा की। अब पुस्तकोल्लिखित वर्णन की उससे तुलना करने लगा।.... यह निश्चय करके कि दोनों, अर्थात् पुस्तक और शव लेशमात्र भी परस्पर नहीं मिलते मैंने पुस्तकों को फाड़कर उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले और शव को फेंक, साथ ही पुस्तकों के टुकड़ो को भी फेंक दिया।'' **(साभार-नवजागरण के पुरोधा)**

आशय यह कि हठयोग के आधार पर लिखित ज्ञान को प्रत्यक्ष न पाने पर उन्होंने उस ज्ञान को नकार दिया क्योंकि वह असत्य था। महर्षि ने स्वयं हठयोग की क्रियाओं को समय की बर्बादी कहा है। महर्षि ने पातञ्जलि ऋषि द्वारा प्रणीत अष्टांग-योग को सही माना। यम, नियम, आसन, प्राणायम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि योग के आठ अंग हैं। सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में महर्षि ने प्राणायाम की विधि लिखी है।

प्राणायम विधि-

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य।

जैसे अत्यन्त वेग से वमन होकर अन्न-जल बाहर निकल जाता है, वैसे प्राण को बल से बाहर फेंक के बाहर ही यथाशक्ति रोक देवे। जब बाहर निकालना चाहे तब मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच रक्खे, तब तक प्राण बाहर रहता है। इसी प्रकार प्राण बाहर अधिक ठहर सकता है। जब घबराहट हो, तब धीरे२ भीतर वायु को लेके फिर भी वैसे ही करता जाय, जितना सामर्थ्य और इच्छा हो। और मन में (ओ३म्) इसका जप करता जाय। इस प्रकार करने से आत्मा और मन की पवित्रता और स्थिरता होती है। एक **''बाह्यविषय''** अर्थात् बाहर ही अधिक रोकना। दूसरा **''आभ्यन्तर''** अर्थात् भीतर जितना प्राण रोका जाय, उतना रोक के। तीसरा **''स्तम्भवृत्ति''** अर्थात् एक ही बार जहाँ का तहाँ प्राण को यथाशक्ति रोक देना। चौथा **''बाह्याभ्यन्तराक्षेपी''** अर्थात् जब प्राण भीतर से बाहर निकलने लगे, तब उससे विरूद्ध उसको न निकलने देने के लिये बाहर से भीतर ले और जब बाहर से भीतर आने लगे, तब भीतर से बाहर की और प्राण को धक्का देकर रोकता जाय। ऐसे एक दूसरे के विरूद्ध क्रिया करें तो दोनों की गति रूककर अपने वश में होने से मन और इन्द्रियां भी स्वाधीन होते हैं। **बल, पुरूषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र, सूक्ष्मरूप हो जाती है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म** विष्य को भी शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्य शरीर में वीर्य्यवृद्धि को प्राप्त होकर, स्थिर बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता, सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझकर उपस्थित कर लेना। स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे।

वर्तमान में योग के सही ज्ञान से जनसमुदाय अनभिज्ञ है। आज योग के नाम पर अधिकांश जगह हठयोग की क्रियायें आडम्बर के रूप में सिखायी जा रही हैं। योग की शिक्षा को नेपथ्य में रखकर सिर्फ धन कमाने के साधन के रूप में योग के नाम पर आसन की विभिन्न मुद्राओं को प्रचारित किया जा रहा है और ये क्रियायें भी योग से मोक्ष कि बजाय योग से भोग की ओर जनसमुदाय को प्रवृत्त कर रही है। हम भ्रमित हैं कि योग बढ़ रहा है, वास्तव में योग के नाम पर आसन फैल रहा है। हमारा कर्तव्य है कि योग के ज्ञान को उसके सही परिपेक्ष्य में जनसमुदाय के समक्ष रखा जाये वरना आने वाले समय में योग को लेकर भी उनसमुदाय भ्रमित हो जायेगा और पाखण्ड़ नया रूप से लेगा।

संगीत आर्य
9323573892

आर्य समाज का छठा नियम

प्रो. रत्न सिंह

संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ही व्यक्ति अपने कर्म किया करता है। यदि गहराई से देखा जाए तो ये कर्म प्राय: स्वार्थपरक होते हैं। इन कर्मो से मनुष्य अपना और अपने परिवार का हित करता है। आरम्भ में, अर्थात् बाल्यावस्था में मनुष्य स्वार्थी होता है। अपना हित करना ही उसका उद्देश्य होता है। इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि जब तक मनुष्य अपना हित न कर ले, वह दूसरे के बारे में सोच भी नहीं सकता। भूखे भजन न होय गोपाला। एक रोगी, भूखा और अशिक्षित व्यक्ति दूसरे का क्या हित कर पाएगा? परन्तु यह भी तो सत्य है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। बिना समाज के उसके जीवित रहने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। परिवार समाज का ही एक अङ्ग है। बच्चे का शारीरिक, मानसिक और संवेगात्मक विकास परिवार पर ही आश्रित है। ज्यों-ज्यों बच्चा विकसित होता जाता है उसका सम्बन्ध परिवार तक ही सीमित न रहकर, समाज, प्रान्त, राष्ट्र और विदेश से जड़ जाता है। इन सबसे हमारी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। कितनी ही प्राण-रक्षक ओषधियों के लिए हमें विदेशी पर निर्भर रहना पड़ता है। इस प्रकार शनै: शनै: मनुष्य अनुभव करता है कि उस पर अन्यों का भारी ऋण है, जिससे अनृण होने के लिए उसे परहित करना चाहिए। परहित करने का नाम है परोपकार। यह मनुष्य का एक बहुत बड़ा सद्गुण है। सज्जन सदा सदा परोपकार में प्रवृत्त होते हैं। इसी में उनकी शोभा है, इसीलिए प्रस्तुत नियम में कहा है- ''संसार का उपकार करना इस समाज (आर्यसमाज) का मुख्य उद्देश्य है।''

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि वह उपकार केवल अपना या अपने परिवार, रिश्तेदारों, मित्रों या किसी विशेष व्यक्ति, वर्ग, ग्राम, नगर, प्रान्त और देश का ही नहीं, अपितु समस्त विश्व का करना है। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि आर्यसमाज एक वर्ग या सम्प्रदायविशेष तक सीमित, संकुचित संगठन नहीं है। यह एक सार्वभौम संगउन हैं। आर्यसमाज के संस्थापक **महर्षि दयानन्द सरस्वती** ने अपने अमर-ग्रन्थ **सत्यार्थप्रकाश** के अन्तर्गत स्वमन्तव्या-मन्तव्यप्रकाश में लिखा है- ''मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूँ कि जो तीन काल में सबको एक-सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है, किन्तु जो सत्य है, उसको मानना-मनवाना और जो असत्य है, उसको छोड़वाना मुझको अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यवर्त में प्रचरित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता।''

परोपकारी-जन का महर्षि दयानन्द की दृष्टि में बहुत ऊँचा स्थान है। ''**गोकरुणानिधि:**'' की भूमिका में वे लिखते है- ''पूजनीय जन वे हैं कि जो अपनी हानि होती हो, तो भी सबके हित के करने में अपना तन, मन, धन लगाते हैं और तिरस्कारणीय वे हैं, जो अपने ही लाभ में सन्तुष्ट रहकर सबके सुखों का नाश करते हैं।'' यही आशय इन शब्दों में व्यक्त किया गया है- ''क्या ऐसा कोई भी विद्वान् भूगोल में था, है और होगा जो परोपकाररूप धर्म और परहानिस्वरूप अधर्म के सिवाय धर्म वा अधर्म की सिद्धि कर सके। धन्य वे महाशय जन हैं, जो अपने तन, मन और धन से संसार का अधिक उपकार सिद्ध करते हैं।''

हमें परोपकार किस प्रकार करना चाहिए और उसका क्रम क्या हो? इस प्रक्रिया और क्रम को बताते हुए ही इस नियम में आगे कहा है- अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। इन तीनों में से प्रथम शारीरिक उन्नति करना है। संसार की शारीरिक उन्नति के दो भेद हैं- एक तो अपनी शारीरिक उन्नति और दूसरी अपने से इतर संसार के सभी जनों की उन्नति। इसका कारण यह है कि शरीर के स्वस्थ होने पर ही सारे कार्य या प्रगतियाँ चलती है। इस सम्बन्ध में चरक का कथन विशेष विचारणीय है-

सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।
तदभावे हि भावानां सर्वाभाव: शरीणिणाम्।।

- चरक, निदान. ६/७

अर्थात् अन्य सब-कुछ को छोड़कर सबसे पहले शरीर की देखभाल करे, क्योंकि अस्वस्थ होने पर अन्य सब स्वत: बेकार हो जाता है।

एतदर्थ शरीर-विज्ञान के अनुसार उचित दिनचर्या, पौष्टिक-स्वच्छ सादा और नियमित भोजन, व्यवस्थित व्यायाम, वीर्य का संरक्षण और उपयुक्त निद्रा को व्यवहार में लाना चाहिए। दूसरों की शारीरिक उन्नति के लिए अपने बन्धुओं में, बाल-बच्चों में सात्त्विक आहार की रीति प्रचलित करे। व्यायाम का स्वभाव डाले। बालकों को खेलकूद में, दौड़ने-भागने, उछलने-फाँदने में तथा अन्य अनेक साहस के कार्यों में प्रोत्साहन दे। शारीरिक हित के लिए उपर्युक्त सभी आवश्यक हैं। इनमें भोजन का प्रमुख स्थान है। मांस का सेवन कदापि नहीं करना चाहिए। महर्षि दयानन्द मांस-भक्षण के प्रबल विरोधी थे। अपने उपदेशों में मासं-भक्षण का वे अत्यन्त जोरदार खण्डन करते थे। उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' में से मांस-भक्षण निषेधक कुछ सन्दर्भ यहाँ उद्धृत किये जाते हैं-

''जिस प्रकार आरोग्य, विद्या और बल प्राप्त हो, उसी प्रकार भोजन-छादन और व्यवहार करें-करावें, अर्थात् जितनी क्षुधा हो, उससे कुछ न्यून भोजन करें। मद्य-मांसादि के सेवन से अलग रहें।'' - समुल्लास-२

''ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी मद्य, मांस, गन्ध, माला, रस, स्त्री और पुरुष का सङ्ग, सब खटाई, प्राणियों की हिंसा आदि कर्मो को छोड़ दें।'' -समुल्लास-३

''जो लोग मांस-भक्षण और मद्यपान करते हैं, उनके शरीर और वीर्यादि धातु भी दुर्गन्धादि से दूषित होते हैं।'' - समुल्लास-१०

''और मद्य-मांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्य-मांस के परमाणुओं ही से पूरित है, उनके हाथ का न खावें।'' - समुल्लास-१०

''और जो मांस खाना है, यह भी उन्हीं वाममार्गी टीकाकारों की लीला है, इसलिए उनको राक्षस कहना उचित है, परन्तु वेदों में कहीं मांस का खाना नहीं लिखा।'' -समुल्लास-१२

महर्षि दयानन्द की दृष्टि में मांसाहारी व्यक्ति नीचतर होता है। वे लिखते हैं- ''शुभ गुण-युक्त सुखकारक पशुओं के गले छुरों से काटकर जो अपना पेट भर सब संसार की हानि करते हैं, क्या संसार में उनसे भी अधिक कोई विश्वासघाती, अनुपकारी, दुःख देनेवाले और पापी जन होंगे?'' -गोकरूणानिधि:

''हे मांसाहारियों! तुम लोग जब कुछ काल के पश्चात् पशु न मिलेंगे, तब मनुष्यों का मांस भी छोड़ोगे वा नहीं? हे परमेश्वर! तू क्यों इन पशुओं पर, जोकि बिना अपराध मारे जाते हैं, दया नहीं करता?

क्या उनपर तेरी प्रीति नहीं है? क्या इनके लिए तेरी-

न्याय सभा बन्द हो गई है? क्यों उनकी पीड़ा छुड़ाने पर ध्यान नहीं देता और उनकी पुकार नहीं सुनता? क्यों इन मांसाहारियों के आत्माओं में दया प्रकाश कर निष्ठुरता, कठोरता, स्वार्थपन और मूर्खता आदि दोषों को दूर नहीं करता? जिससे ये इन बुरे कामों से बचें।'' - गोकरुणानिधि:

शारीरिक के पश्चात् आत्मिक उन्नति का क्रम आता है। मनुष्य के पूर्ण विकास के लिए केवल शारीरिक विकास पर्याप्त नहीं है। इतने अंश में तो मनुष्य और पशु में कोई अन्तर नहीं है। पाशविक बल में मनुष्य शेर, हाथी और बैल आदि पशुओं का सामना नहीं कर सकता। इसीलिए मनुष्य को शारीरिक बल के साथ-साथ मानसिक और आध्यात्मिक बल भी उपार्जित करना चाहिए। एतदर्थ शिक्षा के द्वारा विद्या की प्राप्ति कर आत्मा-अनात्म का बोध कर अपने कर्त्तव्यों का ज्ञान प्राप्त करे। प्रातः- सायं नियमितरूप से ईश्वर उपासना करे। वेद और ऋषिकृत ग्रन्थों का स्वाध्याय करे। विवेक, वैराग्य, षट्क सम्पत्ति (शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान) मुमुक्षुत्व, ये चार-साधन और चार अनुबन्धों का पालन करे। इसके साथ ही श्रवण, मनन, निदिध्यासन और क्षाक्षात्कार को अपने आचरण में लाये। आत्मिक उन्नति के अनेक उपाय हैं। उनमें से कुछ का संकेत यहाँ किया गया है। यह विषय बहुत विस्तृत और गम्भीर है। विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिए महर्षि दयानन्द रचित सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका का अध्ययन किया जाए।

इसके बाद सामाजिक उन्नति पर विचार करना है। समाज के अन्तर्गत अपना परिवार अथवा आर्यसमाजस्थ लोगों का समाज ही अभिप्रेत नहीं है, वरन संसारभर के समाजों से अभिप्राय है। संसार में अनेक देश है, उनमें अनेक समाजें हैं। विभिन्न समाजों की सभ्यता और संस्कृति में विभिन्नता है। सबका खान-पान, रहन-सहन, बोल-चाल समान नहीं है। हमें सभी का अध्ययन करके उनमें व्याप्त दोषों तथा अन्धविश्वास और कुरीतियों को दूर करना चाहिए। महर्षि दयानन्द के अनुसार संसारभर में वेद-विरुद्ध चार मत हैं- पुराणी, जैनी, किरानी और कुरानी और चारों की एक सहस्त्र से अधिक शाखाएँ हैं। इन मतों-में व्याप्त दोषों को दूर करने के लिए महर्षि दयानन्द ने खण्डन-मण्डन-पद्धति का प्रयोग किया है। इससे सत्यासत्य का बोध हो जाता है और बिना सत्यासत्य की जानकारी प्राप्त किये समाज-असम्भव है। सन्त तुलसीदास कहते हैं-

खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा।।

तेहिं तें कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने ।।

- रामचरितमानस, बालकाण्ड

अर्थ- दुष्टों के पापों और अवगुणों की और साधुओं के गुणों की कथाएँ- दोनों ही अपार और अथाह समुद्र हैं। इसी से कुछ गुण और दोषों का वर्णन किया गया है, क्योंकि बिना पहचाने उनका ग्रहण या त्याग नहीं हो सकता।

समाज-सुधार के लिए आर्यसमाज के प्रत्येक सदस्य को अपने समय का कुछ भाग सार्वजनिक कामों में लगाना चाहिए। हमारे समाज में जात-पात, छुआछूत, बाल-विवाह, मादक,-द्रव्यों का सेवन आदि अनेक कुरीतियाँ व्याप्त हैं। उन्हें दूर करने के लिए जगह-जगह सभाओं का आयोजन किया जाए और वहाँ भजन-व्याख्यान के साथ-साथ समाज-सुधार सम्बन्धी साहित्य भी वितरित किया जाए। अपने प्रचार में कटुता न आने दें। बड़े प्रेम-प्यार के साथ अपनी बात प्रस्तुत की जाए। खण्डन करने का अर्थ दूसरे का दिल दुखाना नहीं है। महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के चतुर्दश समुल्लास में मुस्लिम मत का खण्डन करते हुए लिखते है ''परमात्मा सब मनुष्यों पर कृपा करे कि सब के सब-प्रीति, परस्पर मेल और एक-दूसरे के सुख की उन्नति करने में प्रवृत्त हों। जैसे में अपना वा दूसरे मतमतान्तरों का दोष पक्षपातरहित होकर प्रकाशित करता हूँ, इसी प्रकार यदि सब विद्वान् लोग करें, तो क्या कठिनता है कि परस्पर का विरोध छूट, मेल होकर आनन्द में एकमत होके सत्य की प्राप्ति सिद्ध हो।''

इस नियम में आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य- 'संसार का उपकार करना' बतलाकर उसकी प्राप्ति का उपाय शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना कहा गया है। विचारणीय यह है कि सामाजिक उन्नति को तीसरा स्थान क्यों दिया गया है? उत्तर स्पष्ट है कि जब तक कोई व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ न हो और उसमें आत्मबल का अभाव हो तो वह समाज की उन्नति कर ही नहीं सकता। सामाजिक सेवा के लिए व्यक्ति को स्थान-स्थान पर घूमना पड़ता है, पैदल, बस और ट्रेन आदि से यात्राएँ करनी पड़ती है। दुर्बल-रोगी व्यक्ति यह कार्य कर ही नहीं सकेगा और यह भी नितान्त सत्य है कि आत्मबलहीन व्यक्ति का जनता पर कोई प्रभाव नहीं पडता। महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द और पं. लेखराम आदि उपदेश कों एवं नेताओं के भाषणों का श्रोताओं पर जादू का-सा प्रभाव इसीलिए पड़ता था कि उनमें आत्मिक बल था।

समिधाएं कैसी हों?

समिधा का अर्थ है सम = समान आकार वाली अर्थात यज्ञ में प्रयोग होने वाली वो लकड़ियां समिधा कहलाती हैं जो समान आकार वाली हों। प्रायः ये समिधाएं ८ अंगुष्ठ (अंगूठे) के बराबर लंबाई की होनी चाहिए, न कम, न अधिक।

१) यज्ञ के प्रारम्भ में अंगुल की ३ समिधाएं क्यो डालते हैं। 8x3 =24 यह दिन के २४ घंटे का प्रतीक है कि हमे पूरे दिन यज्ञमय रहना है, परोपकार के कार्य करते रहना है। अर्थात आठों प्रहर श्रेष्ठ कार्य करने हैं। यह ८ अंगुल योग के ८ अंगों की ओर संकेत करता है कि हम योगी बने और समाधि तक पहुंचे। ८ अंगुल हमारे शरीर के ८ चक्रों को शोधन करने का संकेत करता है और तत्पश्चात परमानंद को प्राप्त करने की प्रेरणा।

२) यह समिधाएं वृक्षों से तोड़ी गयी नही होनी चाहिए बल्कि जो टहनियां स्वयम सूख कर वृक्षों से टूट के धरती पर गिरी हो वही समिधाएं प्रयोग की जानी चाहिए, वाह कितना सुंदर, वेद भगवान का हर आदेश, हर मन्त्र कितनी सुंदर शिक्षा देता है वो वृक्षो तक की हिंसा की अनुमति नहीं देता है।

३) यज्ञ करते समय भी यू ही समिधाओं को यज्ञ कुंड में डाल नही सकते, उनका चयन करना होता है, अच्छी प्रकार एक पर एक सीधे तिरछे रखना पड़ता है ताकि वायु का प्रवेश भलीभांति हो सके और अग्नि भली प्रकार से प्रज्वलित हो सके।

४) यज्ञ में कोई भी समिधा का प्रयोग नहीं कर सकते चन्दन, आम, पीपल, पलाश, वटवृक्ष, शमी आदि वृक्ष की होनी चाहिए। इनके पीछे logic यह है कि इन वृक्षो की समिधाएं अधिक ज्वलनशील होती है तथा इनके जलने से CO_2 (कार्बन डाई आक्साइड) न्यून तथा O_2 ऑक्सीजन अधिक निकलती हैं, धुंआ कम छोड़ती है, प्रदूषण मुक्त होती हैं। सामन्यतः पीपल व आम्र की समिधाएं श्रेष्ठ मानी गयी है और अधिकतर प्रयोग में लायी जाती हैं।

५) हमे समिधाओं का चयन करते समय यह भी देखना चाहिए कि इनमें कीड़ा न लगा हो अन्यथा हिंसा होगी। क्योंकि यज्ञ को अध्वर कहा गया है

''अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसी
स इद देवेषु गच्छति।। ऋग'', १.१.४

६) समिधाएं पूर्णतया सूखी हो ताकि जलने में बाधा न हो अन्यथा धुंआ अधिक करेगी और यज्ञ का उद्देश्य - प्रदूषण से मुक्ति सिद्ध न हो पायेगा।

६) यज्ञ में समिधा डालते समय यह भी देखना चाहिए कि न कम हो, न ही बहुत ज्यादा। इतनी मात्रा हो कि अग्नि सही सही प्रज्वलित हो और लपटें अच्छी तरह उठें .....

७) यज्ञ के ईंधन के रूप में जो काष्ठ/लकड़ी जो निम्न लिखित बिल्व पलाश शमी गूलर पीपल बड आम के वृक्ष से प्राप्त की गयी हैं, उनको समिधा कहते हैं।

एक मान्यता ऐसी भी है कि जिन पेड़ों से दूध अर्थात सफ़ेद रंग का द्रव्य निकलता है उनकी लकड़ी को समिधा के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। क्योंकि इन दूध निकालने वाले पेड़ों की समिधा से जब यज्ञ किया जाये तो यह समिधा भस्म होने पर इसकी राख/भस्म काली कोयले जैसी न होकर, चाँदी जैसी बिलकुल सफ़ेद होती है। अन्य पेड़ों की समिधा की राख कोयले जैसी होती है।

समिधा को बनाने के लिए यज्ञ वेदी के अनुसार प्रमाण में काट कर रखा जाना चाहिए। यह समिधा किसी मलिन स्थान से न प्राप्त की गयी हो। साथ में इसमें कीड़ा आदि दोष न हो समिधा स्वच्छ होना बहुत जरूरी है। यदि इसमें भी किसी प्रकार का संशय हो तो महर्षि दयानंद जी कृत **संस्कार विधि** देखि जा सकती है।

चन्दन की समिधा भी यदि प्राप्त हो जाये तो बहुत सुंदर है। परंतु आज के जमाने में चन्दन की समिधा मिलना बहुत दुष्कर है।

इस कारण चन्दन न मिले तो दूसरी उपरोक्त समिधा की लकड़ी का विवरण मैंने बता दिया है।

परंतु क्या समिधाओं को बनाते समय हम यह सावधानी रखते हैं कि समिधाएं स्वच्छ है कि नहीं। बहुत कम आर्यो को मैंने योग्य समिधाओं से यज्ञ करते हुए देखा है। अधिकतर समिधाओं के चयन में कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता समिधा में कीड़े लगे हों अथवा जो कभी कभार यज्ञ करते हैं उनको तो देखा है पिछले समय की बची हुई समिधा जो पूरी सड़ी हुई है भी नयी समिधा में जोड़ कर यज्ञ के लिए रख देते हैं। उनका उद्देश्य है अग्नि जलनी चाहिए और जब तक मन्त्र चल रहे हैं तब तक की समिधा है तो यज्ञ कर लो। परंतु उस समिधा से पाप हो रहा है या पुण्य इससे किसी को कोई लेना देना नहीं है। यदि एक भी कीड़े वाली समिधा यज्ञ में चली गयी तो आपका यज्ञ सफल है या असफल है इसका विचार करना चाहिए।

आजकल मैं देखता हूँ की समिधाएं तो आ भी ठीक गयी हों उनका कोई प्रमाण नहीं होता। यह उन अष्टअंगुला समिधाओं के विषय में तो पूर्ण सत्य है जो हम लोग अयन्त इध्म आत्म आदि तीन मन्त्रों के द्वारा आहुति देते हैं। इन समिधाओं का कोई ध्यान नहीं रखा जाता की ये क्या प्रमाण में हैं। कोई बहुत पतली तीलियों जैसी तो कोई बड़ी बड़ी मोटी मोटी समिधाओं को यज्ञ कुंड में फेंक देते हैं। जबकि अष्टअंगुला समिधाओं का भी प्रमाण है जो यजमान के हाथ के अंगूठे जितनी मोटी और आठ अंगुलियों जितनी लंबी होनी चाहिए। परंतु जहाँ केवल अग्नि को प्रज्वलित करके सुगंधि फ़ैल जाये इतना ही उद्देष्य हो वहां यज्ञ के विज्ञान से किसी को क्या लेना देना।

यज्ञ को करने वाले को सर्वप्रथम यज्ञ के विज्ञान का पूर्ण पता होना चाहिए तभी तो यज्ञ लाभकारी हो सकता है। अन्यथा यज्ञप्रार्थना में यज्ञ लाभकारी हो की कितनी भी प्रार्थना गा लीजिये पूर्ण लाभ से वंचित रहेगा यजमान।

आइये कुछ बात यज्ञ की समिधा संकलन के विषय में भी चर्चा करें। यज्ञीय व्यवस्था हमको ऋषि मुनियों की देन है कभी इस पर विचार किया कि ऋषि मुनि किस प्रकार की समिधा से यज्ञ करते थे। वे जंगल में जाकर जो समिधाएं नीचे पड़ी होती थी उनसे यज्ञ करते थे। पेड़ से काटकर नहीं लाते थे। अर्थात जो समिधा वृक्षराज स्वयं त्याग दे उसी से यज्ञ करना चाहिए ऐसा उनका मंतव्य था। किसी भी पेड़ पर कुल्हाड़ी से वार करके उसे कष्ट देकर लायी हुई समिधा नहीं होती थी। इतनी भी हिंसा यज्ञ में मंजूर नहीं थीं। परंतु हम तो पेड़ को पूर्ण काट कर या ने की पेड़ की हत्या करके लायी हुई

समिधाओं से यज्ञ करते हैं। अब इस पर यह दलील दी जा सकती है कि हम इस आधुनिक युग में कहाँ समिधाओं को ढूंढने जायें। इतना समय नहीं है। जो लकड़ी की टाल पर मिलगई वही ठीक हैं। चलो इस बात को मान लिया की आपके पास समय नहीं इस कारण जो काट कर लायी गयी समिधा से हमने यज्ञ किया। पर जो वृक्ष काटा गया उसकी भरपाई आपने पर्यावरण को की क्या? आपके यज्ञ के लिए एक वृक्ष कट गया उसको renew कैसे करोगे। एक दिन आपके यज्ञ के लिए काटने को पेड़ नहीं बचेंगे तब यज्ञ कैसे करोगे? समिधा कहाँ से आएंगी? इस कारण से जितने पेड़ काट कर समिधा की पूर्ति कर रहे हो उतने पेड़ भी लगाये जाने चाहिए। अन्यथा यज्ञ करने वालों पर पेड़ों को क्षति पहुंचाने के आरोप लगते रहें हैं और एक दिन यज्ञ के लिए समिधा भी मिलनी बंद हो जायेगी।

उपरोक्त कुछ बातें मैंने अपने कानों द्वारा विद्वत चरणों में बैठ कर सीखीं थी वह कुछ शब्दों में पिरो कर आप तक पहुँचाने का प्रयास किया है। आशा है इस से यज्ञ करने वालों में यज्ञ की समिधा चयन में कुछ रूचि जगे और हम समिधाओं को ठीक देख भाल कर यज्ञ की महत्ता को और पवित्र कर पाएं।

संदीप आर्य

लेखक पुस्तक - यज्ञ थेरेपी

FREE MEDICAL CAMP

A free mammography check camp was organised by Arya Samaj Santacruz on 4th June 2017.
It was conducted whole day from 11AM to 4PM in which more than 40 women had come for breast cancer check up.
Bone density check was also done free of cost.
On this occasion Swami Vivekananda ji from Rojad were also present.
This whole camp was sponsored by Suvidha Parivar, Khar, Mumbai.

विश्ववारा संस्कृति

सत्य और ज्ञान से भरपूर आर्यसमाज नोएडा का मुख पत्र मानवीय जीवन मूल्यों की संरक्षक पत्रिका **''विश्ववारा संस्कृति''** का प्रकाशन किया गया है, वार्षिक शुल्क २५० रु. है।

सभी प्रबुद्ध आर्यों, सुधी पाठकों, सम्माननीय विद्वानों से आग्रह है कि पत्रिका को आगे बढ़ाने में सहयोग प्रदान करें।

आर्य **कै. अशोक गुलाटी**

-आर्य समाज, आर्ष गुरूकुल

मो. : ९८७१७९८२२१, ९५५५७७९५९१

'वैदिक विद्वान'
आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री सम्मानित

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा एवं डी.ए.वी. कॉलेज प्रबंधकर्त्री समिति ने महात्मा हंसराज जयन्ती के अवसर पर जयपुर (राजस्थान) में आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री जी को वैदिक विद्वान के रूप में सम्मानित किया। सम्मान रूप में उन्हें शाल, प्रशस्ति पत्र, तुलसी की पौध एवं ३१ हज़ार रुपये की मानराशि प्रदान की।

वैदिक विद्वानों में दिल्ली से अकेले आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री जी को इस सम्मान से आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा एवं डी.ए.वी. कॉलेज प्रबंधकर्त्री समिति के यशस्वी प्रधान डॉ. पूनम सूरी जी ने विभूषित किया। विशाल प्रांगण में हजारों आर्यजनों की उपस्थिति तो थी ही हिमाचल प्रदेश के महामहिम राज्यपाल आचार्य देवव्रत जी एवं पूर्व राज्यपाल श्री टी.एन. चतुर्वेदी जी भी इस भव्य समारोह में उपस्थित थे।

सम्मानित करने के लिए आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा एवं डी.ए.वी. कॉलेज प्रबन्धकर्त्री समिति के यशस्वी प्रधान डॉ. पूनम सूरी जी एवं समस्त पदाधिकारी धन्यवाद एवं बधाई के पात्र हैं।

डॉ. सुन्दर लाल कथूरिया

साहित्य संपादक

गुरुकुल आश्रम आमसेना

आज से ५० वर्ष से पूर्व उड़िसा के नवापारा जिले में गुरुकुल आश्रम आमसेना की स्थापना १९६८ ई. में आर्य जगत् के तपस्वी, सन्यासी पूज्य स्वामी धर्मानन्द जी सरस्वती ने हरियाणा से आकर की थी। अब तक इस संस्था से हजारों छात्र-छात्राएं स्नातक बन चुके है बहुत सारे स्नातक शिक्षा के क्षेत्र में विश्वविद्यालय रोहतक से स्वर्ण पदक प्राप्त कर चुके हैं।

इस वर्ष भी इस परम्परा को गौरव प्रदान किया गुरुकुल के निम्न होनहार मेधावी छात्रों ने महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक से स्वर्ण पदक प्राप्त करके गुरुकुल का गौरव बढ़ाया है। यहां व्याकरण, दर्शन, साहित्य आदि विभिन्न विषयों में प्रथमा से लेकर एम.ए. (आचार्य) तक विद्याध्ययन की पूर्णत: नि:शुल्क व्यवस्था एक तपस्वी, संन्यासी द्वारा की जा रही है। इसी का प्रतिफल है कि आचार्य मनुदेव, (व्याकरणाचार्य, दर्शनाचार्य), ब्र. श्री निरंजन आर्य (व्याकरणाचार्य), ब्र. श्री राकेश आर्य (व्याकरणाचार्य), आदर्श कन्या गुरुकुल की आचार्या सुश्री पुष्पा जी (वेदाचार्य), ममता जी (व्याकरणाचार्य), गीता जी (साहित्याचार्य) आदि को हरियाणा के महामहिम राज्यपाल ने अपने कर कमलों से स्वर्ण पदक प्रदान करके सम्मानित किया है। इन होनहार छात्रों के गुरूकुल में पहुँचने पर भव्य स्वागत किया गया।

निवेदक

स्वामी व्रतानन्द सरस्वती

आचार्य

गुरुकुल आश्रम आमसेना

उपासना का आनन्द

पं. ब्रह्मदेव आर्य

उप त्वाग्ने दिवे दिवे, दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि। - ऋ० १.१.७

ऋग्वेद के इस मन्त्र में भक्तजन भगवान् के प्रति हृदयोद्‌गार प्रकट करते हुए कह रहे हैं कि हे प्रभो, हम प्रतिदिन सायं-प्रात: आपकी उपासना करते हैं। 'उपासना' का अर्थ है समीप बैठना (उप-समीप, आसना-बैठना)। एवं प्रभु की उपासना का अर्थ हुआ प्रभु के समीप मनुष्य कभी न कभी प्रभु के समीप बैठने की स्थिति में होते हैं। प्रयत्न से ऐसी स्थिति भी लायी जा सकती है कि हम जब चाहें तब प्रभु सदा ही हमारे समीप बैठ जाएँ। मैं यहाँ दार्शनिक भाषा नहीं बोल रहा। दार्शनिक दृष्टी से तो प्रभु सदा ही हमारे समीप है और हम उसके समीप हैं, क्योंकि वह सर्वव्यापक है। परन्तु यदि हम उसके सानिध्य का अनुभव नहीं करते तो समीप होता हुआ भी हमसे दूर है। इसलिए तो उपनिषद् के ऋषि ने गाया है- 'तद् दूरे तदु अन्तिके' वह दूर भी है और समीप भी है।

विद्वान् लोग कहा करते हैं कि उपासना योग की समाधि-अवस्था में होती है, और वे ठीक ही कहते हैं, परन्तु मैं उनकी बात का खण्डन न करता हुआ भी सर्व-साधारण में यह कहना चाहता हूँ कि उपासना को योगियों के लिए ही सीमित न समझिए। आप और मैं सभी उपासना का आनन्द ले सकते हैं, भले ही हम योग-समाधि की उच्च स्थिति तक न पहुँचे हों।

हम सब प्रतिदिन प्रात: सायं सन्ध्योपासना करते हैं, प्रभु के साथ मिलने का प्रयत्न करते हैं। सर्वप्रथम गायत्री मन्त्र द्वारा शिखा बांधते हुए प्रभु से मिलने की भावना को अपने अन्दर दृढ़ करते हैं। फिर आचमन द्वारा हृदय को पवित्र करते हैं। फिर जल से अंगस्पर्श करते हुए एक-एक इन्द्रिय को निमन्त्रण देते हैं कि प्रभु-मिलन में तुम सहायक होना, बाधक नहीं। फिर मार्जन-मन्त्र से सिर, नेत्र, कण्ठ, हृदय आदि अवयवों के दोषों को बुहारकर साफ कर देते है। फिर प्राणायाम द्वारा बुहारे हुए दोषों को जलाकर पवित्रता सम्पादन करते हैं। फिर अधमर्षण-मन्त्रों से यह भावना जागृत करते हैं कि प्रभु के पदार्पण के लिए स्वच्छ किए हुए हमारे इस देव-मन्दिर में यदि कोई पाप का डेरा डालने आएगा तो उसका हम डटकर मुकाबला करेंगे। फिर मनसा-परिक्रमा सब दिशाओं की परिक्रमा कर हम देखते हैं कि कहीं कोई शत्रु हमें अपवित्र करने के लिए तथा प्रभु मिलन में बाधक होने के लिए घात लगाए तो नहीं बैठा है। यदि कोई ऐसा पाप-शत्रु दीखता है तो उसे हम उस दिशा के अधिपतियों, रक्षकों और इषुओं के शिकंजे में कसकर चकनाचूर कर देते है। इस प्रकार सर्वात्मना अपने-आपको प्रभु मिलन के लिए तैयार कर उपस्थान-मन्त्रों से हम प्रभु के सानिध्य का अनुभव करते हैं। आनन्द-विभोर हो हम पुकार उठते हैं-

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँ श्रृणुयाम शरदः शतं, प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।। - यजु० ३६-२४

अहा! यह सूर्यसम प्रकाशक प्रभु मेरे अन्दर उदित हो गया है। मैं वैसे ही उसकी समीपता का अनुभव कर रहा हूँ जैसे कोई सामने स्थित वस्तु की समीपता का अनुभव करता है। इस ज्योति के प्रति में मुग्ध हूँ। इसके प्रकाश में मैं सौ वर्षों तक देखता रहूँ, सौ वर्षों तक जीवित रहूँ, सौ वर्षों तक सुनता रहूँ, सौ वर्षो तक प्रवचन करता रहूँ, सौ वर्षों तक अदीन बना रहूँ। सौ वर्षों ही क्यों, सौ से भी अधिक वर्षों तक जीवन की सब क्रियाएँ करता रहूँ। केवल मैं अकेला नहीं, हम सभी सौ और सौ से भी अधिक वर्षों तक इन कार्यों को करते रहें।

फिर हम गायत्री मन्त्र का पाठ करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि उपासना की इस बेला में हमने प्रभु के जिस अद्‌भुत तेज की झांकी पाई है वह तेज हमारी बुद्धियों को नया मोड़ देवे, नई दिशा। मे प्रेरित करत देवे। हम आनन्द-विह्वल हो प्रभु के चरणों में लिपट जाते हैं-

नमः शंभवाय च, मयोभवाय च
नमः शंकराय च, मयस्काराय च
नमः शिवाय च, शिवतराय च ।।

- यजु० १६.४१

यह है हमारी दैनिक उपासना का ब्यौरा, परन्तु यहाँ प्रश्न यह उपस्थित होता है कि हम प्रभु की उपासना क्यों करें?

वह माता-पिता है

बालक स्वभावत: अपने माता-पिता के पास बैठने में सुख मानता है। बालक पढ़ रहा है, भोजन कर रहा है, परन्तु वह माँ को अपने पास से हिलने देना नहीं चाहता। माँ कहती है तू तो कहानी पढ़ रहा है, में यहाँ बैंठी क्या करूँगी, कुछ और काम कर लेती हूँ, परन्तु बालक उसे पकड़कर बैठा लेता है, नहीं तुम यहीं बैठी रहो बड़ा सुहावना दिन है, बादल छाये हुए हैं, कहीं घूमने जाने की योजना बनती है, परन्तु जब बालक को पता चलता है कि पिताजी नहीं चल रहे तो वह कहता है में तो पिताजी के बिना नहीं जाता। बात क्या है? माता-पिता का सानिध्य बालक को क्या देता है? आखिर कुछ तो बालक को मिलता ही है, तभी तो वह उनके बिना व्याकुल होता है। इसी प्रकार भक्तों को भी भगवान् के सानिध्य से कुछ मिलता है। भगवान् भक्तों की माता है, भक्तों का पिता है-

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे।। - ऋ० ८.३८.११

''हे शतक्रतो इन्द्र, हे सैकड़ों कर्म करने वाले प्रभो, हे निवासक,

तू ही हमारा पिता है, तू ही माता है। इसलिए हम तुझसे सुख की याचना करते हैं।''

अदभुत् सोमरस

भक्त को भगवान् से क्या मिलता है यह वेद के शब्दों में सुनिए। भक्त को भगवान् से मिलता है सोम-रस, जिसके लिए वेद गाते हैं-

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं, तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम्।

उतो न्वस्य पपिवांसमिन्द्रं, न कश्चन सहत आहवेषु।।

-ऋ० ६.४७.१

जिसने प्रभु से मिलने वाले आनन्द-रस को पा लिया है उसके मुख से सहसा उद्गार निकल पड़ते हैं- आहा, यह कैसा स्वादु है! केसा मधुर है! कैसा तीव्र है। कैसा रसीला है। जिसने इसे पी लिया उसे देवासुर-संग्रामों में कोई असुर परास्त नहीं कर सकता।''

सोम का झरना

इसी रस का एक बार स्वाद लेकर भक्तजन आतुरता के साथ पुकार उठते हैं-

स्वाष्ठिया मदिष्ठ्या पवस्व सोम धारया।

इन्द्राय पातवे सुतः।। - साम० ४६८

''हे प्रभु से झरने वाले आनन्द-रस, तुम अपनी स्वादुतम धारा के साथ मेरे अन्दर झरो, तुम अपनी अतिशय मस्ती लाने वाली धारा के साथ मेरे अन्दर झरो। तुम मुझ-आत्मा के पान करने के लिए प्रस्तुत होते रहो।''

तरंगों का झूला

उपासना करने पर प्रभु भक्त को अपने साथ आनन्द-सागर की तरंगों में झुलाता है-

परि प्रासिष्यवत् कविः, सिन्धोरूर्मावधिश्रितः।

कारुं बिभ्रत् पुरुष्पृहम्।। -सांम. ४८६

कवि प्रभु स्वयं आनन्द-सागर की लहरों पर उतरा रहा है। जब भक्त उपासना करता हुआ उसके समीप पहुँचता है तब वह उस अतिशय प्यारे अपने उपासक को (कारु को) अंगुलि पकड़कर अपने साथ तैराने लगता है और लहरों में झूला झूलाकर कृत-कृत्य कर देता है।

तेरी उपासना करें

अतः आइए, हम भी उस प्रभु की उपासना करें-

अम्भो अमो महः सह इति त्वोपास्महे वयम्।।

अम्भो अरुणं रजतं रजः सह इति त्वोपारस्महे वयम्।।

उरुः पृथुः सुभूः भुव इति त्वोपास्महे वयम्।।

प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम्।।

-अथर्व० १३.४.५०-५३

हे प्रभो, आप (अम्भः) रसमय हैं, आनन्दस्वरूप हैं, (अमः) बली हैं, (महः) महिमाशाली हैं, (सहः) साहसी हैं (इति) त्वा उपास्महे वयम्) इस कारण हम आपकी उपासना करते हैं।

हे प्रभो, आप (अम्भः) हम प्यासों के पानी हैं, (अरुण) प्रकाशमय हैं, (रजतं) हम गरीबों की चाँदी हैं, (रजः) हम निर्बलों का रक्त हैं, इस कारण हम आपकी उपासना करते हैं।

हे प्रभो, आप (उरुः) सर्वशक्तिमान हैं, (पृथुः) सर्वव्यापक हैं, (सुभूः) सत्स्वरूप हैं, इस कारण, हम आपकी उपासना करते हैं।

हे प्रभो, आप (प्रथः) प्रख्यातः हैं, (वरः) वरणीय हैं, वर देने वाले हैं, (व्यचः) विस्तीर्ण हैं, (लोकः) सर्वद्रष्टा हैं, इस कारण हम आपकी उपासना करते हैं।

आपकी उपासना हमें रस प्रदान करें, आनन्द प्रदान करें, सद्गुण का प्रवाह प्रदान करें।

नमस्ते अस्तु पश्चत, पश्य मा पश्यत ।। अथर्व० ३.४.५५

हे सर्वदर्शी, आपको नमस्कार हो। हे सर्वदर्शी, मुझ पर दृष्टि डालो।

पाद टिप्पणियाँ-

१. (अग्ने) हे तेजस्वी पथ-प्रदर्शक प्रभो, (वयम्) हम सब (दिवे दिवे) प्रतिदिन (दोषावस्तः) सायं-प्रातः (धिया) ध्यान द्वारा (नमो भरन्तः) नमस्कार की भेंट लाते हुए (त्वा) तेरी (उपएमसि) उपासना करते हैं।

२. (वसो) हे निवासक प्रभु, (त्वं हि) तू ही (नः) हमारा (पिता) पिता है। (शतक्रतो) हे शतप्रज्ञ शतकर्मा प्रभु, (त्वम्) तू ही (माता) माता (बभूविथ) है। (अध) इसलिए हम (ते) तेरे (सुन्नम्) आनन्द को (ईमहे) माँगते हैं।

३. (अयम्) यह सोमरस, आनन्दरस (किल) निश्चय ही (स्वादुः) स्वादु है, (उत) और (अयम्) यह (मधुमान) मधुर है। (अयम्) यह (किल) निश्चय ही (तीव्रः) तेज है, (उत और (अयम्) यह (रसवान्) रसीला है। (उतोनु) और (अस्य पपिवांसम्) इसके पाने वाले (इन्द्रम्) आत्मा को (आहवेषु) देवासुर-संग्रामों में (कश्चन) कोई भी (न रहते) पराजित नहीं कर सकता।

४. (सोम) हे आनन्द-रस, तू (स्वादिष्ठ्या) स्वादिष्ट और (मदिष्ठ्या) अतिशय मस्ती लाने वाली (सारया धारा के साथ (पवस्व) प्रवाहित हो। तू (इन्द्राय पातवे) जीवात्मा के पीने के लिए (सुतः) निचोड़ा गया है।

५. (कविः) कवि प्रभु (सिन्धोः) आनन्द-सिन्धु की (ऊर्माँ) लहरों पर (अधिश्रितः) सवार हुआ-हुआ, (पुरुस्पृहम्) बहुत प्यारे (कारुम्) स्तुतिकर्ता को (बिभ्रत्) पकड़े हुए (परिप्रासिद्धदत्) तैर रहा है, झूल रहा है।

वेद की कुछ शिक्षाएँ

ओमप्रकाश आर्य

वेद मे मानव-जीवन को उन्नत बनाने के लिए अनेक शिक्षाएँ हैं। उनके परिपालन से जहाँ स्वयं का जीवन उत्तम बनता है वहीं देश, समाज राष्ट्र भी सुन्दर, आनन्दपूर्ण व शान्ति से परिपूर्ण होता है। वैज्ञानिक उन्नति के साथ-साथ नैतिक उन्नति का होना परमावश्यक है। इसके अभाव में सारी वैज्ञानिक प्रगति सारहीन हो जाएगी। मनुष्य में आसुरी वृत्तियाँ हावी हो जाएँगी जो विज्ञान को अभिशाप बना देंगी। विज्ञान वरदान बने अभिशाप नही-इसके लिए वेदों की कुछ शिक्षाएँ दी जा रही है। इनमें सर्वजनहिताय की भावना है। ये शिक्षाएँ मानवमात्र के लिए हैं-

नमो व: पितरो रसाय
नमो व: पितर: शोषाय
नमो व: पितरो जीवाय
नमो व: पितर : स्वधायै
नमो व: पितरो घोराय
नमो व: पितरो मन्यवे
नमो व: पितर: पितरो
नमो वो गृहान्न : पितरो दत्त
सतो व: पितरो द्वेष्मैतद्ध: पितरो वास:।। यजु. २/३२

आनन्द की प्राप्ति के लिए विद्या प्रदान करने वाले विद्वान् लोगों को हमारा नमस्कार है।

दु:ख और शत्रुओं की निवृत्ति के लिए तुम्हें हमारा नमस्कार है।

जीवन धारण कराने वाले विद्वानों को हमारा नमस्कार है।

अन्न, न्याय, राज्य आदि भोगो की शिक्षा देने वाले विद्वानों को हमारा नमस्कार है।

दु:खों को दूर करने वाले तुम्हें हमारा नमस्कार है।

सुष्टाचार करने वाले जीवों से दूर करने वाले विद्वानों को हमारा नमस्कार है।

ज्ञानी-विद्वानों को हमारा नमस्कार है।

प्रीति के साथ रक्षा करने वाले विद्वानों को हमारा नमस्कार है। आप हमारे घरों में आकर रहो। हमें शिक्षा और विद्या देते रहो। हमारे पास जो विद्यमान पदार्थ है उन्हें हम आपको देते रहे। हमारे द्वारा दिए गए वस्त्र आदि वस्तुओं को आप ग्रहण करते रहें।

'नम:' का शाब्दिक अर्थ आदर-सत्कार करना है, विनम्र होना है, स्वभाव को उत्तम बनाना है, क्रोध को छोड़ना है, ज्ञान ग्रहण करने की इच्छा है, नमस्कार करना है।

माता, पिता, विद्वान, गुरुजन, ज्ञानी, सन्त-महात्मा, नाना, नानी, दादा, दादी सब पितर है। इन्हें प्रतिदिन नमस्कार करना चाहिए। इनका आदर-सत्कार करना चाहिए। इनकी सेवा करनी चाहिए। इन्हें सुख पहुँचाना चाहिए। यही पितृयज्ञ है। जो इस यज्ञ को करता है उससे भगवान प्रसन्न होता है। इनकी सेवा से प्राप्त आशीर्वाद जीवन में आनन्द भरता है। पिता की आज्ञापालन के लिए राम चौदह वर्ष तक वन में रहे। अनेक कष्ट सहे। श्रवण कुमार माता-पिता की सेवा में उन्हें बहँगी में बैठाकर गंगा स्थान के लिए चले। गुरु की आज्ञा पाकर आरुणि रातभर धान के खेत में पड़ा यहा। महात्मा गाँधी ने अपने पिता की उनके मरते दम तक सेवा की। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने गुरु के चरणों में अपना जीवन समर्पित कर दिया।

सत्यं च मे श्रद्धा च मे
जगच्च मे धनं च मे
विश्वं च मे महश्च मे
क्रिडा च में मोदश्च मे
जातं च में जनिष्यमाणं च मे
सूक्तं च मे सुकृतं च मे
यज्ञेन कल्पन्ताम् ।। यजुर्वेद १८/५

मेरा यथार्थ विषय सबका हित करना हो।

मेरी श्रद्धा उपकारमय हो।

मेरी सन्तान, मेरा धन, मेरा सर्वस्व, मेरी बड़ाई, मेरा खेलना-कूदना, मेरी प्रसन्नता, मेरे द्वारा प्राप्त पदार्थ उपकार के लिए हो।

मेरा कथन, मेरा कार्य, मेरी उन्नति आदि सब परोपकारार्थ हों।

यज्ञ एक व्यापक अर्थ वाला शब्द है। जिस प्रकार यज्ञ में डाली गई आहुति से जड़-चेतन आदि सबका कल्याण होता है उसी प्रकार हमारा सत्य, हमारी श्रद्धा, हमारा कार्य, हमारे द्वारा संग्रहीत पदार्थ आदि सब अपने ही हित के लिए न होकर उनमें 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' की भावना हो। वेद भगवान कहते है कि अपने आनन्द को बाँटो, अपने धन को बॉटो, अपनी कीति को बाँटो, अपने सुख को बाँटो-तभी उसकी सार्थकता है। प्रकृति में संचय की प्रवृत्ति नही है। सब बाँटने का कार्य कर रहे हैं। सूर्य देता है। चन्द्रमा देता है। बादल देते है। नदियाँ देती हैं। धरती देती है। वायु देती है। जल देता है। पर्वत देते है। यहाँ तक कि पशु-पक्षी भी किसी न किसी रुप में देने का कार्य करते हैं। इसलिए हमारे अन्दर देने की प्रवृत्ति होनी चाहिए। बहनेवाला जल पीने योग्य होता है और एक जगह एकत्र जल पीने योग्य नहीं रहता। धन से, बल से, विचार से, सेवा से, सत्कार से हर कोई देश, समाज, राष्ट्र के लिए कुछ दे सकता है।

स्वातंत्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर का समस्त परिवार राष्ट्रसेवा में भेट हो गया। उन्होंने अपने अंतिम पत्र मृत्यु-सन्देश में अपनी बड़ी भाभी यशोदाबाई को लिखा, ''मातृभूमि! तेरे चरणों में मै अपना मन अर्पण कर चुका हाँ अपना तन, मन, धन, यौवन सभी दे चुका हूँ। तेरा कार्य ईश्वरीय कार्य है। इसलिए तेरी सेवा में ही मुझे भगवान की सेवा दिखाई दी। इस प्रज्वलित अग्नि में अपनी भावज पुत्र, कान्ता और ज्येष्ठ भ्राता को भी अर्पण कर चुका हूँ और अन्त में अपनी देह भी चढ़ाने को प्रस्तुत हूँ।'' ऐसे राष्ट्र भक्तों से हमें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

पश्येम शरद: शतम्।
जीवेम शरद: शतम्।
बुध्येम शरद: शतम्।
रोहेम शरद: शतम्।
पूषेम शरद: शतम्।

भवेम शरदः शतम्।
भूयेम शरदः शतम्।
भूयसीः शरदः शतात्।। अथर्ववेद १९/६७/१-८
हम सौ वर्षो तक देखते रहें।
हम सौ वर्षो तक जीते रहें।
हम सौ वर्षो तक समझते रहें।
हम सौ वर्षो तक चढ़ते रहें।
हम सौ वर्षो तक पुष्ट होते रहें।
हम सौ वर्षो तक बने रहें।
हम सौ वर्षो तक शुद्ध रहें।

हम सौ वर्षों से अधिक तक देखते रहें, जीते रहें, समझते रहें, चढ़ते रहें, पुष्ट होते रहें, बने रहें, शुद्ध होते रहें।

वेद भगवान कहते है कि मनुष्य को नित्य प्रार्थना करनी चाहिए कि हे भगवान! हमारी आँखें पवित्र हों, हम इनसे कोई गलत चीज न देखें। हमारे कान पवित्र हों, हम इनसे कोई गलत बात न सुनें। हमारी वाणी पवित्र हो, हम इससे अशुभ शब्द न निकालें। हमारा मन पवित्र हो, हम इससे अशुभ शब्द न निकालें। हमारा मन पवित्र हो, हम इससे अशुभ चिंतन न करें। हमारे हाथ-पाँव पवित्र हों, हम इनसे कोई गलत कार्य न करें, कहीं गलत स्थान पर न जाएँ। हमारा स्वास्थ्य उत्तम बना रहे। हमें कोई भी शारीरिक या मानसिक रोग न हो। हमारा सारा जीवन पवित्र बना रहे। हम परमार्थ के कार्य करते रहें। यह शरीर राष्ट्रसेवा में लगा रहे।

ऐसी प्रार्थना से मनुष्य में देवत्व के गुण आते हैं। वह महानता के सोपान पर चढ़ता है और देश, समाज, राष्ट्र को कुछ दे पाता है। निश्चय ही ऐसे लोग देवता कहलाते है। सुभाषचन्द्र बोस ने आई. सी.एस. के पद की ऊँची नौकरी करने से इन्कार कर दिया और माता-पिता से कह दिया कि वे विदेशी सरकार की गुलामी किसी भी कीमत पर नही करेंगे। उन्होंने राष्ट्रसेवा का दृढ़ संकल्प किया और देशबन्धु चित्तरंजनदास के आदेशानुसार देश सेवा में जुट गए। सर सी.वी. रमन ने अपने एक सामान्य घरेलू नौकर को धन देकर नागपुर में एक होटल खोल दिया और वह होटल खूब चला। देशबन्धु चित्तरंजन दास ने मद्रास की एक जनसभा में भाषण देते हुए कहा, ''मै इस स्वराज्य के लिए अपना जीवन देने को तैयार हूँ। आज आप इस शुभकार्य का प्रारम्भ कर लें और फिर मेरी परीक्षा कर लें। आप देखेंगे कि मैं कभी आप में से किसी से एक इंच भी पीछे नही रहूँगा।'' ऐसे देशसेवी सबकी प्रेरणा के स्रोत है।

त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा
ये व देवा असुर ये च मर्त्ताः।
शतं नो रास्व शरदो विचक्षे-
ऽश्यमायूँषि सुधितानि पूर्वा।। ऋग्वेद २/२७/१०
मनुष्य श्रेष्ठ बने और मद्यपान से दूर रहे।
पूरी आयु प्राप्त करने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करे।
विद्वान् लोग अनुकरणीय कार्य करें। सब लोग हर अवस्था में सुख भोगें।

मद्यपान से आयु कम होती है। शरीर होगी हो जाता है। मनुष्य कष्ट भोगता है। इसलिए पूर्णायु प्राप्त करने के लिए मद्यपान नही करना चाहिए। इसी प्रकार बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, गुटखा, पानमसाला आदि भी रोग उत्पन्न करते हैं। श्रेष्ठ जीवन जीने के लिए इन सबसे दूर रहना हितकर है। वेद भगवान का आदेश है कि मनुष्य को फल, अन्न, दुग्ध, घृत आदि का सेवन करना चाहिए मद्य आदि का नही। ब्रहचर्य पालन से आयु बढ़ती है।

इन्द्रमिद्देवतातये इन्द्रं प्रयत्यध्वरे।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामहे इन्द्रं धनस्य सातये।।
सामवेद ३/२/७/७
श्रेष्ठ कार्य के लिए परमेश्वर का स्मरण करें।
श्रेष्ठ कार्य आरम्भ होने पर परमेश्वर को याद करें।
युद्ध में परमेश्वर की सहायता माँगे।
आनन्द-प्राप्ति के लिए परमेश्वर को पुकारें।

प्रत्येक शुभ कार्य के प्रारम्भ में परमात्मा का स्मरण कर लेना चाहिए। जब वह कार्य समाप्त हो जाए तब उस परमात्मा को धन्यवाद देना चाहिए। कभी-कभी मन में देवासुर संग्राम मचता है। अच्छाई और बुराई का संघर्ष चलता है। शुभ और अशुभ विचार टकराते है। सत्य और असत्य का युद्ध होता है। उचित और अनुचित कार्य करने की इच्छा होती है। मंगल और अमंगल का युद्ध होता है। स्वार्थ और परमार्थ की लड़ाई होती है। प्रेम और घृणा की लहरें उठती है। ऐसे समय में परमात्मा को याद करना चाहिए। वह इस संघर्ष को समाप्त कर देता है। उचित और अनुचित का निर्णय दे देता है। उसकी सूक्ष्म आवाज को सुन लेना चाहिए। परमात्मा ने इस संसार को इसलिए बनाया है कि मानव सुख भोग सके। आनन्द प्राप्त करे। मनुष्य को आनन्द प्राप्त करने के लिए सदैव परमात्मा का स्मरण करते रहना चाहिए। वह सच्चे हृदय की प्रार्थना को अवश्य सुनता है।

वेद भगवान कहते है कि मनुष्य को केवल अपने ही नहीं अपितु सबके सुख की कामना करनी चाहिए क्योंकि अकेला खाने वाला पाप का भक्षण करता है। सब लोग सुखी हों, सब लोग आरोग्यवान हों, सब कल्याण को प्राप्त करें, कोई दुःखी न हो। देवजन ऐसी ही प्रार्थना करते हैं।

वृष्णऽऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा
वृष्णऽऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मैं देहि
वषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा
वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि।। यजुः १०/२
हे राजन्! मुझे सत्यनीति से राज्य को दीजिए।
उस राज्य की रक्षा न्याय से प्रकाशित कीजिए।
बलवान सेना से युक्त सुन्दर वाणी से युक्त राज्य दीजिए।
सुख की वर्षा करनेवाले राज्य को मुझे दीजिए।

हम राष्ट्र के लिए सुख-शान्ति की कामना करें। सब सत्य-मार्ग पर चलें। सबकी रक्षा हो। सबको न्याय मिले। सब एक-दूसरे से मधुर वाणी बोलें। सैनिक देश की रक्षा करें। सब मिलकर चले। मिलकर रहें। सबके विचार एक होवें। कोई किसी से ईर्ष्या-द्वेष-घृणा न करे। ऐसी राष्ट्रीय भावना सबके अन्दर होनी चाहिए। जिसके हृदय में राष्ट्रप्रेम की भावना नही होती, वह राष्ट्रद्रोही है। राष्ट्रीय एकता के लिए विचारों की एकता बहुत आवश्यक है।

विचारों की विभेदता के कारण राष्ट्र छिन्न-भिन्न हो जाता है। इसलिए हमें राष्ट्रीय एकता बनाए रखने में पूर्ण सहयोग करना चाहिए, क्योंकि राष्ट्र सबसे ऊपर होता है उससे ऊपर कोई नही।

❑❑❑

मोक्ष के साधन

स्वामी रामनन्द सरस्वती

मोक्ष प्राप्त करने के लिये यह भी बहुत आवश्यक है कि हमें यह ज्ञान हो कि मोक्ष क्या है और उसके साधन क्या है?

मोक्ष क्या है?

महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश के नवम समुल्लास में लिखते हैं

'मुंचन्ति पृथग्भवन्ति जना यस्यां सा मुक्ति'

जिसमें छूट जाना हो उस का नाम मुक्ति है। अर्थात् दु:ख से छूट कर सुख को प्राप्त होने को मुक्ति कहते हैं। महर्षि गौतम ने न्याय दर्शन में अध्याय १.१.२१ में कहा है **'बाधना लक्षणं दुखम'** अर्थात् बाधा, ताप, दु:ख, पीड़ा सब पर्यायवाची हैं और यही दुख के लक्षण है। जिस पदार्थ के सम्बन्ध में मन में यह इच्छा या ऐसा विचार हो कि यह मुझे प्राप्त न हो उसे दु:ख कहते हैं और फिर १.१.२२ में मोक्ष को परिभाषित किया

''तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्ग:।''

यानी उस दु:ख के अत्यन्त अभाव को अथवा निवृत्त हो जाने को मोक्ष कहते हैं। तैत्रिय: उपनिषद् में भी आता है-

'सत्यं ज्ञानमन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्।
सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति'।।

जैसे आकाश अनादि सत्य और सर्वत्र व्यापक है, वैसे ही ईश्वर भी अनादि, सत् और सर्वत्र विद्यमान है। वह अत्यन्त ज्ञानस्वरूप और आनन्दस्वरूप भी है। वह सर्वव्यापक होने के कारण सबके हृदय रुपी गुफा में भी विराजमान है। जो मनुष्य ऐसा जानता है, उसकी सब कामनाएं पूर्ण हो जाती है और वह ब्रह्म के साथ सदा आनन्द में रहता है। सांख्य दर्शन का पहला सूत्र भी कहता है- **'अथ त्रिविध दुखात् अत्यंत निवृत्ती अत्यंत पुरुषार्थ'** अर्थात् अध्यात्मिक, आदिदैविक और आदिभौतिक- तीनों प्रकार के दुखों से छूट कर मुक्ति पाना ही परम पुरुषार्थ है। महर्षि पतंजलि जी महाराज ने भी चौथे पाद के अंतिम सूत्र ३४ में भी यही सन्देश दिया है और कहा है-

'पुरुशार्थ शून्यानां: गुणानाम् प्रतिप्रसव: कैवल्यं, स्वरुप प्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति'- अर्थात् जब प्रकृति के तीनों गुण - सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण- अपना कार्य समाप्त कर अपने कारण यानी मूल प्रकृति में लीन हो जाते हैं और आगे उनका कार्य करना बंद हो जाता है तब चित्ति शक्ति अर्थात् चेतन आत्मा अपने स्वरूप और परमात्मा के सत्य स्वरूप को जानकर अपने और परमात्मा के स्वरूप में स्थित हो जाता है और सब दुखों से छूट कर कैवल्य प्राप्त कर लेता है।

संक्षेप में कहने का तात्पर्य यह है कि सभी ऋषि, मुनि, योगी और तपस्वी आदियों ने सब दुखों से छूट जाने को परमपुरुषार्थ मोक्ष कहा है और ऐसा कोई भी प्राणी नहीं होगा जो दुखों से छूटना नहीं चाहता होगा। इन्द्रियों के भोग तो पशु योनी में भी भोगे जा सकते हैं, परन्तु मोक्ष केवल मनुष्य योनी में ही प्राप्त किया जा सकता है। अत: यह सभी का परम कर्त्तव्य है कि मोक्ष के साधनों का ज्ञान प्राप्त कर उन्हें अपने जीवन में धारण करें।

सत्यार्थप्रकाश में महर्षि दयानन्द जी ने मोक्ष के निम्नलिखित साधन लिखे हैं:-

१) विवेक
२) वैराग्य
३) शटक सम्पत्ति
४) मुमुक्षुत्व

सत्पुरुषों के संग से विवेक अर्थात् नित्य-अनित्य, सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का निश्चय करें। नित्य पदार्थ केवल तीन हैं- (१) ईश्वर, (२) जीव और (३) मूल प्रकृति।

मूल प्रकृति में विकृति से बना हुआ समस्त जग और पदार्थ अनित्य हैं। जो पदार्थ जैसा है और जिसके जो गुण कर्म स्वभाव हैं वैसा ही जानना, वैसा ही मानना, वैसा ही बोलना और जीवन में धारण करना सत्य और इसके विपरीत असत्य होता है। जिस काम के करने में भय, शंका और लज्जा आये वह अधर्म और अकर्त्तव्य और जिसके करने में अभय, नि:शक्ता, प्रसन्नता और उत्साह हो वह धर्म और कर्त्तव्य होता है। जो मनुष्य विवेकी नहीं होता और नित्य-अनित्य एवं सत्य-असत्य के भेद को नहीं समझता, वह अविद्या से ग्रस्त हो जाता है और अन्धकार में फस जाता है।

पञ्च कोशों का वर्णन

विवेक के अन्तर्गत पांच कोशों का ज्ञान भी करना चाहिए। पहला कोश अन्नमय कोश है जो त्वचा से लेकर अस्थि पर्यन्त का समूह और पृथ्वीमय है। दूसरा प्राणमय कोश है जिसमें प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान कार्य करते हैं। तीसरा मनोमय कोश है जिसमें मन और अंहकार के साथ पांच कर्म इन्द्रियाँ है। चौथा विज्ञानमय कोश है जिसमें बुद्धि और चित्त के साथ पञ्च ज्ञान इन्द्रियाँ शामिल हैं। पांचवा आनन्दमय कोश जिसमें प्रीति, प्रसन्नता आनंद और आधार कारण रुप प्रकृति है। इन्ही से जीव सब प्रकार के कर्म, उपासना और ज्ञान आदि व्यवहारों को करता है।

तीन अवस्था और स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर

इसके साथ ही तीन अवस्थाओं के सम्बन्ध में भी ज्ञान होना चाहिए। वे यह है- जागृत, स्वप्न और तीसरी सुसुप्ति। तीन शरीर हैं- पहला स्थूल, दूसरा सूक्ष्म और तीसरा कारण।

स्थूल शरीर, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पाँच भूतों से बना है जो दिखाई देता है। इसी से सुख-दुख भोगे जाते हैं। यही पैदा होता है, बढ़ता है, एक सीमा तक बढ़कर रुक जाता है, फिर घटता है रोगी होकर अन्त में नाश को प्राप्त होता है।

सूक्ष्म शरीर- स्थूल शरीर में एक सूक्ष्म शरीर है जो जन्म- जन्मांतरों से जब तक आत्मा का मोक्ष नहीं हो जाता, आत्मा के साथ चिपटा रहता है। इसी शरीर में जन्म-जन्म के संस्कार चित्त के माध्यम से इकट्ठे रहते हैं। योगी लोग इसी शरीर के द्वारा पिछले जन्मों की बात ध्यान के माध्यम से

जान लेते है। पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच सूक्ष्म भूत और मन तथा बुद्धि इन १७ तत्वों का बना हुआ है। कई विद्वान अहंकार को भी सूक्ष्म शरीर का अंग मानते हैं और १८ तत्वों का समूह कहते हैं।

तीसरा कारण शरीर जिस में गाढ़ निंद्रा होती है और प्रकृति रुप होने से विभु और सब जीव के लिए एक है। चौथा तुरिय- शरीर वह है जिसमें समाधि से जीव परमात्मा के आनन्द में मग्न होते हैं।

महर्षि ने आगे यह भी लिखा है कि इन सब कोशों और अवस्थाओं से जीव अलग है और वही सब का प्रेरक, सब का धर्ता, साक्षीकर्ता, भोक्ता कहलाता है। जो कोई ऐसा कहे कि जीव कर्त्ता भोक्ता नहीं तो जानो वह अविवेकी और अज्ञानी हैं क्योंकि बिना जीव के यह जो जड़ पदार्थ हैं इन को सुख दु:ख का भोग व पाप पुण्य करना कभी नहीं हो सकता। हाँ इन के सम्बन्ध से जीव पाप पुण्य का कर्ता और सुख-दुखों का भोक्ता है।

दूसरा साधन वैराग्य

मोक्ष प्राप्ति का दूसरा साधन वैराग्य है। महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में और भगवान् कृष्ण ने गीता में चित्त की वृत्तियों को रोकने के लिए अभ्यास और वैराग्य दो साधन बताये हैं। वैराग्य का अर्थ है कि मन से लोक और परलोक के सभी सुखों और पदार्थों की इच्छा व तृष्णा का परित्याग करना। मन में यदि संसार की किसी वस्तु के लिए राग बना हुआ है और केवल बाह्य रुप से उसका त्याग किया हुआ है तो व वास्तविक वैराग्य नहीं है। असली वैराग्य है रोग रहित और तृष्णा रहित होना। महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन के प्रथम पाद के १५ वे सूत्र में वैराग्य का लक्षण लिखा है **''दृष्ट अनुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम।''** अर्थात् किसी भी देखे हुए और सुने हुए रुप, रस, गन्ध आदि विषयों में तृष्णा का न होने की संज्ञा का नाम वैराग्य है। ऐसे वैराग्य को भी महर्षि ने 'अपर' वैराग्य की कोटि में रखा है और इससे सम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि होती है। इस से भी ऊँचा 'पर' वैराग्य है जिससे असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होती है और उसको १६ वें सूत्र में इस प्रकार बताया है-

''तत्परं पुरूषख्यातेर्गुणवैतृष्णयम्'

अर्थात् आत्मा का ज्ञान हो जाने पर प्रकृति के तीनों गुणों- सत, रज, और तम-से तृष्णा रहित हो जाना पर वैराग्य है।

जगत गुरु शंकराचार्य ने विवेक चूड़ामनी में यह जानने के लिए कि वैराग्य हो गया है या नहीं यह पहचान बताई है कि जब भोग्य वस्तुओं में वासना उत्पन्न न हो तब समझ लेना चाहिए कि वैराग्य की भावना बह रही है। महर्षि कपिल ने सांख्य दर्शन के चौथे अध्याय के सूत्र २८ जो इस प्रकार है- **''दोषद्रश्नात् उभयो...''** में भी बहुत उपयोगी साधन वैराग्य उत्पन्न करने के लिए बताया है। इस का अर्थ आत्मा और प्राकृतिक विषय जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि हैं दोनों के दोषों के चिन्तन-मनन से भी वैराग्य की भावना जागृत होती है। आत्मा सम्बन्धित दोष है कि पवित्र होते हुए भी आत्मा प्रकृति के संयोग से गर्भ आदि नाना प्रकार के कष्टों में फंस जाता है। जब चित्त में इस प्रकार की भावना उदित होती है कि मैं तो नित्य, शुद्ध, पवित्र और निर्मल हूँ फिर क्यों यह दु:ख होता है उसका चित्त वैराग्य की ओर नमनगामी हो जाता है। विषय सम्बन्धित दोष यह है कि प्रकृति के सारे कार्य परिणामी हैं- आज हैं कल नहीं रहेंगे- और फिर यह भी सर्वदा सम्भव नहीं है कि विषयों से होने वाले सुख तथा उसके साधन सर्वत्र, सदा मिलते रहेंगे। यह भावना आ जाती है कि इन के पीछे कब तक और कहाँ तक भागा जाये? इस से अच्छा तो यही है कि इन में राग हो न रहे।

तीसरा साधन - षटक सम्पत्ति

तीसरा साधन छ: प्रकार के कर्म करना- एक 'शम' जिससे अपने आत्मा और अंत:करण को अधर्म आचरण से हटा कर धर्म आचरण में लगाना। दूसरा है 'दम' जिसका अभिप्राय है कि चक्ष नाक, कान आदि इन्द्रियों को अपने वश में रखना और उन्हें बुरे जाने से रोक कर शुभ कर्मो में लगाना। तीसरा है 'उपरति' अर्थात् दुष्टों से जो बुरे कर्मों को करने में प्रसन्नता का अनुभव करते हैं, उनकी सदा उपेक्षा और अवहेलना करना। चौथा 'तितिक्षा'- अर्थात् हानि लाभ, सुख-दुख, मान-अपमान, गर्मी सर्दी आदि में सम रहना और अपने मन के संतुलन को बनाये रख कर मुक्ति देने वाले कर्मों में ही लगे रहना। पांचवा है' श्रद्धा जिस का तात्पर्य है ईश्वर, वेद और ऋषि-मुनियों के वचन और आप्त पुरुषों के शब्द में पूर्ण विश्वास करना। सत्य को अर्थात् जो पदार्थ जैसा है और जिस के जैसे गुण, कर्म और स्वभाव है, उसको वैसा ही मानना और मन में धारण करना श्रद्धा है। वेद में श्रद्धा की बड़ी महिमा गाई है। ऋग्वेद का मन्त्र सं० १०/१५१/४

'श्रद्धा देवा यजमाना वायुगोपा उपासते। श्रद्धा हृदयय्याकूत्या श्रद्धा विन्दते वसु।।'- बताता है कि विद्वान महात्मा, यज्ञ करने-कराने वाले और प्राण वायु भक्षण करने वाले श्रद्धा के आधार पर ही किया करते हैं। यजु० वेद में तो यहाँ तक उपदेश दिया है कि श्रद्धा से ही सत्य अर्थात् ईश्वर को प्राप्त किया जाता है। इस सम्बन्ध में अध्याय १९ मन्त्र ३० बहुत महत्वपूर्ण है जो इस प्रकार है- **''व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणां। दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते''**- अर्थात् व्रत का अनुपालन करने से मनुष्य को योग्यता प्राप्त होती है। योग्यता से आदर प्राप्त होता है। जिसके फलस्वरुप सत्य पर श्रद्धा और विश्वास पैदा होता है। श्रद्धा से मनुष्य सत्य को पा लेता है। महर्षि वेद व्यास जी कहते हैं कि जैसे माँ शिशु की रक्षा करती है, उसी भांति श्रद्धा माँ साधक की रक्षा करती है। छटी सम्पत्ति है 'समाधान' जब तक सारे सशय और भ्रान्ति दूर नहीं हो जाती तब तक कोई भी मनुष्य न तो किसी भी वस्तु को पूरे मन से त्याग करने और न ही ग्रहण करने के लिए तैयार होगा। जब तक सन्देह रहेगा तब तक पक्ष और विपक्ष में प्रश्न उठते ही रहेंगे। परन्तु जब कोई भी शंका शेष नहीं रह जाती तब चित्त का समाधान हो जाता है। महर्षि दयानंद जी लिखते हैं कि चित की एकाग्रता 'समाधान' जो छटी सम्पत्ति है।

चौथा साधन है मुमुक्षुत्व। इसका तात्पर्य है कि जैसे भूखे को भोजन और प्यासे को जल के अतिरिक्त कुछ भी अच्छा नहीं लगता, उसी प्रकार मुक्ति और मुक्ति के साधन के इलावा कुछ भी अच्छा नहीं लगना और वही सब से अधिक प्रिय लगना।

''महर्षि दयानन्द की कुछ उपयोगी बातें''

– खुशहालचन्द्र आर्य

१. जब मनुष्य उत्तम गुणों से युक्त होता है, तब सब लोग सब प्रकार से उसका सम्मान करते हैं।

२. जो जितना अपराध करे, उसको उतना दण्ड और जो जितना अच्छा काम करे, उसको उतना ही पारितोषिक देना। अधिक या न्यून नहीं, चाहे माता-पिता भी क्यों नहीं।

३. जब बुरे, बुराई नहीं छोड़ते तो भले भलाई क्यों छोडें।

४. दुष्ट दुर्व्यसनों में फंस जाने से मर जाना अच्छा है।

५. अपने अंश को न छोड़े और पराये अंश को कभी स्वीकार न करें।

६. हारे हुए शत्रु को प्रतिष्ठा कभी न करे, किन्तु उसका यथायोग्य मान्य रखे। परन्तु उसके छोड़कर स्वतन्त्रता कदाचित न देवें। जैसे पृथ्वीराज चौहान ने, मोहम्मद गोरी को कई बार छोड़कर अपने ही पैरों पर कुल्हाडी मारी।

७. अपराध में जनता से राजपुरुषों पर अधिक दण्ड होना चाहिए/क्योंकि बकरी के प्रमाद रोकने से सिंह का प्रमाद रोकने में अधिक प्रयत्न होना उचित है।

८. सर्वदा सन्तानों की शिक्षा में धन का व्यय करें किन्तु विवाह, मृत्यु आदि में न करे।

९. यह निश्चय है कि जैसा शीत आचरण और पुरुषार्थ प्रधान पुरुष करता है, वैसा ही इतर जन वर्तते हैं।

१०. जितना कुछ व्यवहार संसार में है, उसका आधार गृहस्थाश्रम है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और सन्यासी तीन आश्रमों को दान और अन्नादि से के प्रतिदिन गृहस्थ ही धारण करता है, इससे गृहस्थ ज्येष्ठ व श्रेष्ठ आश्रम है।

११. विद्वानों का यही काम है कि सत्या सत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण, असत्य का त्याग करके, परम् आनन्दित होते हैं। वे ही गुणग्राहक पुरुष विद्वान होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रुप फलों को प्राप्त होकर प्रसन्न रहते हैं।

१२. जैसे परमात्मा ने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिए बनाए हैं, वैसे वेद भी सब के लिए सृष्टि के आदि में चार ऋषियों जिनके नाम अग्नि, वायु, आदित्य व अंगीरा थे उनके मुख से चार वेद जिनके नाम ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्व वेद है, क्रमशः उच्चारित करवाये हैं। जिसको पढ़ने-पढ़ाने से कुछ भी न आवे, वह निर्बुन्दि और मूर्ख होने से शूद्र कहलाता है। मनुष्य के तीन शत्रु होते हैं, प्रथम- अज्ञान, द्वितीय-अन्याय तृतीय अभाव। इन तीन शत्रुओं को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने-अपने कार्यो से पराजित करते हैं। जो इन तीनों कार्यों को नहीं कर सकता, उसको इन तीनों वर्णो की सेवा करने का भार सौंपा हैं जिससे ये तीनों वर्ण अपने-अपने करम को आसानी से कर सकें/वैसे अन्य धार्मिक व समाजिक कार्यो के करने का शुद्र को भी समान अधिकार है।

१३. संसार में जितने दान हैं अर्थात् जल, अन्न, गौ, पृथ्वी वस्त, तिल, सुवर्ण और घृत आदि इन सब दानों में वेद विद्या का दान सर्व श्रेष्ठ है।

१४. जब तक मनुष्य धार्मिक रहतें है, तभी तक राज्य बढ़ता है और जब दुष्टाचारी होते है, तब नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।

१५. जो-जो बुद्धि का नाश करनेवाले पदार्थ है, उनका सेवन कभी न करें, जैसे अनेक प्रकार से मद्य, भांग, गांजा, अफिम आदी।

१६. जो मनुष्य नित्य प्रातः और सायं सन्ध्योपासना नहीं करता, उसको शूद्रकुल में रख देना चाहिए।

१७. भारत की सब से बड़ी सम्पति उसकी आध्यात्मिक निधि है, अतः सब कुछ खोलकर भी उसकी रक्षा अनिवार्य है।

१८. जिसके शरीर में वीर्य सुरक्षित रहता है, तब उसको आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़के बहुत सुख की प्राप्ति होती है।

१९. वे माता और पिता अपनी सन्तानों के पूर्ण बैरी है, जिन्होंने इनको विद्यादि प्राप्ति नहीं कराई।

२०. जो आकाश के समान व्यापक, सब देवों का देव परमेश्वर है, उसको जो मनुष्य न जानते न मानते और उसका ध्यान नहीं करते, वे नास्तिक, मन्दमति व सदा दुःख- सफर में डूबे ही रहते हैं।

२१. बुरे काम करने में भय, शंका और लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय, निशंकता और आनन्दोत्साह उठता है, वह जीव को आत्मा की ओर से नहीं, परमात्मा की ओर से है।

२२. यह निश्चय है कि जितनी विद्या और मत भूगोल में फैले हैं, वे सब आर्यावर्त्त देश से ही प्रचलित हैं।

२३. ब्रह्मचर्य जो कि सब आश्रमों का मूल है, उसके ठीक-ठीक सुधारने से सब आश्रम सुगम होते हैं और बिगड़ने से बिगड़ जाते हैं।

२४. धर्म के नाम से बदला लेने की भावना अभद्र है।

२५. परोपकार और परहित करते समय अपना मान-अपमान और पराई निन्दा का परित्याग करना ही पड़ता है। इसके बिना सुधार नही हो सकता ।

२६. जो मनुष्य जगत का जितना उपकार करेगा, उसको उतना ही ईश्वर की व्यवस्था से सुख प्राप्त होगा।

२७. ''सुनते और प्रश्नोत्तर होने के पश्चात् सज्जनों को यही योग्य है कि सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करके स्वयं सदा आनन्दीत होकर सब को आनन्दित किया करें।''

२८. सर्वदा सत्य का विजय और असत्य का पराजय और सत्य ही से विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है। इस दृढ निश्चय के अवलम्बन से आप्त लोग परोपकार करने से उदासीन होकर कभी सत्यार्थ प्रकाश करने से नहीं हटते।

२९. सीधा मार्ग वही होता है जिसमें सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्यकरना, पक्षपातरहित न्याय, धर्म का आचरण करना आदि है और इससे विपरीत का त्याग करना।

३०. उपासना शब्द का अर्थ समीपस्थ होना है। अष्टांग योग से परमात्मा के समीपस्थ होने और उसको सर्व व्यापी, सर्वान्तर्यामी रुप से प्रत्यक्ष करने के लिए काम करना होता है, वह सब करना चाहिए।

यह लेख मैंने अति उपयोगी व उत्तम समझाकर श्री अत्तरसिंहजी आर्य ''क्रान्तिकारी'' (प्रधान हरियाणा आर्य युवक परिषद) द्वारा लिखित ''महापुरुषोंकी दृष्टि में दयानन्द व महर्षि के सत्य उपदेश नामक शीर्षक पुस्तक से उद्घृत किया है। यह पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश के आधार पर महर्षि के समस्त विचारों को प्रकट करती है। इतनी उपयोगी पुस्तक को लिखने के लिए मैं ''श्री क्रान्तिकारी'' जी को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ साथ ही पाठकोंसे विनम्र नवेद करता हू कि वे इस लेख को खूब मन लगाकर पढ़े ताकि मेरा तथा ''क्रान्तिकारी'' जी का परिश्रम सफल हो सके।

C/o. गोविन्द राम आर्य अण्ड सन्स,
१८० महात्मा गान्धी रोड, दो तल्ला,
कोलकत्ता-७०००७
मो. : ९८३०१३५७९५

नूतन निष्काम पत्रिका वर्ष-८ अंक-६ मुम्बई जून - २०१७ पृष्ठ-१६ मूल्य- रु. ९/-

आषाढ- २०७३ (२०१७) Post Date : 25-06-2017 MCN/136/2016-2018 MAHRIL 06007/31/12/18-TC पोष्ट आफिस : सांताक्रुज़ (प.)

आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र

संपादक : **संगीत आर्य**

मुद्रक एवं प्रकाशक : **चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्ण प्रिंटिंग प्रेस,** २६, मंगलदास रोड, मुंबई-२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन, वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड़), सान्ताक्रुज़ (प.) मुंबई-४०० ०५४. से प्रकाशित किया। दूरभाष : २६६० २८००/२६६०२०७५

प्रति, ______________________

____

______________________ ोड़

______

कोई भी गो सड़कों पर न घूमे। खेद है कि हमारे देश में अल्पसंख्यकों को लुभाने के चक्कर में गो माता की ओकात मुरदों से भी बदतर बनी दी गई है।

कुतर्क ९: गो पालन से ग्रीन हाउस गैस निकलती है जिससे पर्यावरण की हानि होती है।

समीक्षा- यह वैज्ञानिक तथ्य है कि मांस भक्षण के लिए लाखों लीटर पानी बर्बाद होता है, जिससे पर्यावरण की हानि होती है। साथ में पशुओं को मांस के लिए मोटा करने के चक्कर में बड़ी मात्रा में तिलहन खिलाया जाता है, जिससे खाद्य पदार्थों को अनुचित दोहन होता है। शाकाहार पर्यावरण के अनुकूल है और मांसाहार पर्यावरण के प्रतिकूल है। कभी पर्यावरण वैज्ञानिकों का कथन भी पढ़ लिया करो।

कुतर्क १०: गोमांस पर प्रतिबन्ध भोजन की स्वतंत्रता पर आघात है।

समीक्षा- मनुष्य कर्म करने के लिए स्वतंत्र हे मगर सामाजिक नियम का पालन करने के लिए परतंत्र है। एक उदाहरण लीजिये- आप सड़क पर जब कार चलाते हैं तब आप यातायात के सभी नियमों का पालन करते हैं। अन्यथा दुर्घटना हो जाएगी। आप कभी कार को उलटी दिशा में नहीं चलाते और न ही कहीं पर भी रोक देते हैं, अन्यथा यातायात रुक जायेगा। यह नियम पालन मनुष्य की स्वतंत्रता पर आघात नहीं है अपितु समाज के कल्याण का मार्ग है। इसी नियम से भोजन की स्वतंत्रता के बारे में सोचना चाहिये। जिस कार्य से समाज में दूरियाँ, मनमुटाव, तनाव आदि पैदा हो उस कार्य को समाज हित में न करना चाहिये।

मनुष्य अपने व्यक्तिगत लाभ के लिये पूरे समाज का अहित करे, यह बात सभ्य समाज में स्वीकार्य नहीं हो सकती। इस स्वतंत्रता की कोई तो मर्यादा बनानी पड़ेगी। कल कोई कमजोर, बूढ़े मनुष्यों को मारकर खाना शुरु कर दे तो क्या भोजन की स्वतंत्रता के नाम पर उसको इसकी स्वीकृति दे दी जाएगी? गाय तो सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और स्वास्थय संबंधी कारणों से मनुष्य के लिए सर्वाधिक उपयोगी प्राणी है। महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि गो आदि उपकारी प्राणियों के नाश से राजा और प्रजा दोनों का नाश हो जाता है।

राष्ट्र को सबल बनाने के लिए सभी देशवासियों को झूठी साम्प्रदायिक भावनाओं को त्यागकर सच्ची धार्मिक भावना को अपना कर गोहत्या निषेध के लिये मिलकर प्रयास करना चाहिये, यह देश और समाज के हित में हैं। गो हत्या प्रतिबन्ध के समर्थन में चलाये जा रहे अभियान में सहयोग करना हर हिन्दू के साथ मुस्लिम का भी का परम कर्त्तव्य है, क्योंकि गो से जितना लाभ हिन्दू को होता है उतना ही लाभ मुसलमान को भी होता है।

शान्ति धर्मी से साभार

❒❒❒

सत्यधर्मा राजा

यदुवक्थानृतं जिह्वया वृजिनं बहु।
राज्ञस्त्वा सत्यधर्मणो मुञ्चामि वरुणादहम् ।।३।।

अर्थ-हे मेरे आत्मन्! **(यत्)** जो, तूने **(जिह्वया)** अपनी जिह्वा से **(अनृतम्)** असत्य (उवक्थ) बोला है और जो तूने **(बहु)** बहुत-सा **(वृजिनम्)** पाप किया है (उसके कारण वरुण भगवान् तुझपर क्रुद्ध हो जाते हैं।) **(अहम्)** मैं **(सत्यधर्मण:)** सत्य धर्मवाले **(राज्ञ:)** सबके राजा **(वरूणात्)** वरूण भगवान् से **(त्वा)** तुझे **(मुञ्चामि)** छुड़ाता हूँ।

सबके राजा वरुण भगवान् सत्यधर्मा हैं। उन्हें सत्य से अगाध प्रेम है। के स्वयं भी सत्य नियमों पर चलते हैं। और विश्व-ब्रह्माण्ड को भी सत्य नियमों पर चलाते हैं। इस प्रकार सत्य नियमों पर चलने-चलाने के कारण और सत्य क धारण करनेवाला होने से उन्हें सत्यधर्मा कहा जाता है। वे सत्य के प्रेमी सत्यधर्मा भगवान् हम मनुष्यों में भी, जोकि भगवान् के अमृत पुत्र हैं, सत्य के विरोधी जीवन को सहन नहीं कर सकते। हमारे जीवन के असत्य पर, झूठ पर, पाप पर उन्हें भरी मन्यु आता है। यह असत्य चाहे भाषण का हो और चाहे कर्म का। यह पाप चाहे जिह्वा द्वारा मिथ्या बोलकर किया जाए और चाहे किसी अन्य इन्द्रिय द्वारा मिथ्या कर्म द्वारा किया जाए वरूण भगवान् के मन्यु का, क्रोध का विषय बनता है और इसलिए असत्यवादी और असत्यचारी पापी भगवान् का क्रोध गिरता है। उसके फलस्वरूप उस असत्यकर्मी को अनेक दु:ख भोगने पड़ते हैं। जो वरूण भगवान् के मन्युजन्य दु:खों से बचना चाहें उन्हें असत्याचरण को पाप को त्यागकर पूर्ववर्णित वेद-विहित सत्य मार्ग पर चलना चाहिए और प्रभु की भक्ति करनी चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य निष्पाप हो जाता है और इस प्रकार वरुण के पाशों से, वरुण की पकड़ से छूट जाता है। जो व्यक्ति इस मन्त्र में वर्णित रीति से अपने आत्मा को सम्बोधन करता रहता है और सत्यधर्मा भगवान की असत्यद्वेषिता को स्मरण करके सदा अपने-आपको सत्य के पवित्र मार्ग पर चलाता रहता है, उसे कभी भी वरुण के पाश-बन्धन का भय नहीं रहता।

हे मेरे आत्मन्! प्रभु सत्यधर्मा हैं। वे तेरे भीतर असत्य को सहन नहीं कर सकते। तेरे असत्य पर उन्हें मन्यु आ जाता है। वे तुझे अपने पाशों मे बाँध लेते हैं। यदि तू उनकी पकड़ से बचना चाहता है तो अपने-आपको सत्यधर्मा बना ले।

❒❒❒